गल्प-सञ्चय

[हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकारों की १२ कहानियों का संग्रह

हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग की प्रथमा परीक्षा के
पाठ्यक्रम में निर्धारित

संकलनकर्ता एवं सम्पादक

श्री अखिलेशचन्द्र उपाध्याय

एम० ए०, बी० टी०, साहित्यरत्न

प्रधानाचार्य, सेण्ट्रल ट्रेनिंग कालेज, प्रतिष्ठानपुर (झूसी), प्रयाग

२००८

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

मूल्य १॥)

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय प्रयाग,

प्रकाशकीय

आधुनिक साहित्य मे कहानियो को जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है वह किसी भी वर्ग के पाठक से छिपा नही है। भिन्न-भिन्न शैली को लेकर भिन्न-भिन्न कहानीकारो ने अपनी जिस अलौकिक प्रतिभा का चमत्कार प्रदर्शित किया है, वह वाणी द्वारा प्रकट करने के योग्य नही है। अनुभव-गम्य होने के कारण उन समस्त कहानियो का अध्ययन आवश्यक है।

प्रस्तुत सकलन में प्रचलित समस्त शैलियो की एक-एक कहानी सकलित की गई है और उन्ही कहानीकारो की कहानी ली गई है जिन्हे कहानी-ससार मे प्रतिनिधित्व करने का सौभाग्य प्राप्त है। स्वर्गीय श्रीमान् बडौदा-नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड ने बबई के सम्मेलन मे स्वय उपस्थित होकर जो पाच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन सुलभ-साहित्य-माला के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक इसी माला के अन्तर्गत प्रकाशित की गई है। हमे आशा है हिन्दी के विद्यार्थियो को इस सग्रह से अपेक्षित लाभ होगा।

दयाशंकर दुबे
साहित्य मन्त्री

आषाढ कृष्णा ४, २००८

प्रस्तावना

सम्मेलन की ओर से यह गल्प-संचय नये कलाकारो की नवीनतम शैलियो मे ढली हुई अनेक प्रकार की कहानियाँ प्रस्तुत कर रहा है। अभी तक हमारे कहानीकारो के पहले खेवे ने समाज के विकारो पर कठोर आलोचना करके समाज-संस्कार का बडा आवश्यक कार्य किया जिसमे उद्देश्य-प्रधान रहा भाषा-शैली का एक सामंजस्यपूर्ण स्वरूप जो सब प्रकार के पाठको की रुचि तथा योग्यता को तृप्त करने के लिए पर्याप्त समझा जाता रहा।

इसी बीच विश्वविद्यालयो मे तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओ मे हिन्दी का पर्याप्त प्रवेश हो जाने पर हिन्दी का स्वरूप सस्कृत का आश्रय पाकर अपनी अभिव्यंजना पद्धति तथा शब्दावली लेकर अलग स्पष्ट होने लगा। भाषाओकी खिचडी पकाकर 'हिन्दी' को 'हिन्दुस्तानी' बनाने का जो राजनीतिक प्रपञ्च प्रारभ हुआ उससे हिन्दीके इस व्यवस्थित स्वरूप का मर्म समझनेवाले कुशल कलाकारो का मंडल इतना सचेत और सचेष्ट हो गया कि प्रसाद जी की स्वरूप भाषा-शैलीका अनुसरण करते हुए अनेक सुयोग्य विद्वान् लेखकोने जन-साधारण की विक्रियमाण रुचि को समृद्ध तथा सस्कृत करनेकी उदात्त भावना से लेखनी सभाली और अनेक शैलियो मे सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, वर्ग वादी, समाजवादी, आदर्शवादी, वस्तुवादी, अतिवस्तुवादी, प्रगतिवादी, व्यक्तिवादी तथा द्वन्द्ववादी कहानियाँ ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कथाओ के सहारे रची जाने लगी। ये कहानियाँ भी संस्कृतनिष्ठ, उक्ति-

वैचित्र्यपूर्ण, प्रवहमान, आवेशपूर्ण, लाक्षणिक, व्यग्यात्मक, प्रचारात्मक, अभिव्यंजनात्मक, सवादपूर्ण, वर्णनापूर्ण, चित्रणपूर्ण तथा नाटकीय आदि सभी शैलियो मे लिखी गई और संभवत ससारका कोई ऐसा विषय नही रहा जिसे कहानियो ने स्पर्श न किया हो।

इस युग मे कहानी और सिनेमा दो अत्यत प्रबल भाव-शिक्षा के साधन माने जाते हैं और इसीलिए ससार के सभी देशो मे इन दोनो साधनोका प्रयोग लोक-शिक्षा से लेकर औषधि और व्यापार-सामग्रीके विज्ञापन तक में हो रहा हैं। इसलिए उनका उचित परिमार्जन अत्यत अपेक्षित तथा अनिवार्य हैं।

मुझे यह उल्लेख करते हुए अत्यत हर्ष होता है कि श्री अखिलेशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०, बी० टी० ने अत्यत अध्यवसाय तथा परिश्रमसे पहले पहल व्यक्ति को प्रधानता न देकर कलाकृति को वरीयता देकर इस गल्प-सचय के लिए कहानियों का सग्रह अत्यत विवेकपूर्ण मौलिकवाद के साथ किया है। मुझे विश्वास है कि छात्र इनका आनन्द लेंगे और हिन्दी ससार इनका आदर करेगा।

काशी
ज्येष्ठकृष्ण ९मी, २००८
(२९.५ ५१)

सीताराम चतुर्वेदी

निवेदन

वर्तमान युग कहानियो का युग है । शिक्षा-क्षेत्र मे इसका कितना महत्व है इसके कहने की आवश्यकता नही । इस सकलन मे हिन्दी की प्रतिनिधि शैली की कहानियाँ दी गई हैं । सभव है कुछ पाठको को इनमे नये कहानीकारो की कहानियाँ देखकर कुछ कुतूहल हो किन्तु शैलियो की नवीनता के आग्रहवश मैं इनके सकलन का लोभ सवरण न कर सका ।

आचार्य प्रवर प० सीताराम जी चतुर्वेदी, श्री प्रभात साहित्याचार्य, दयाशकरजी दुबे, तथा श्री रामप्रताप शास्त्री ने समय समय पर अपने सौहार्द तथा प्रोत्साहन से जो बल मुझे दिया है उसके लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ ।

अखिलेशचन्द्र

विषय-सूची

कहानी पर दो शब्द

कहानी क्या है ? यही पहला प्रश्न है जो कहानी नाम के साथ ही हमारे सामने आता है । परिभाषा अथवा कुछ शब्दो की व्याख्या द्वारा कहानी नही समझी जा सकती । यह तो तभी ठीक ठीक बुद्धिगम्य हो सकती है जब हम उसे पढे । तो भी किसी लेखक ने कहानी की परिभाषा यो दी है—"कहानी घटनाओं का सबद्ध क्रम है जो किसी परिणाम पर पहुँचता है ।" थोडे मे यदि कहे तो कहानी किसी महान् घटना का सक्षिप्त वर्णन मात्र है । वह घटना सर्वांगपूर्ण, साधारण से भिन्न ओर मानव प्रकृति के किसी मौलिक रहस्य को व्यक्त करनेवाली होनी है ।

कहानीकार किसी घटना से कहानी का प्रारभ करता है । सर्वप्रथम वह उसके कारण पर प्रभाव डालता है, और तब उस 'कारण' से उत्पन्न 'दूसरे कार्य' वा 'परिणाम' की ओर चलता है । इन्ही कारण और कार्य के सबध द्वारा वह एक ऐसे परिणाम पर पहुँचता है जहाँ उसका उद्देश्य पूर्ण हो जाता है । हमारे दैनिक जीवन मे कारण और कार्य का जो सबध दिखलाई पडता है इन्हीको चमत्कारिक ढग मे दिखलाना ही लेखक का चातुर्य है । नित्य की घटित होने वाली साधारण घटनाए ही चतुर लेखक की लौह लेखनी द्वारा सचालित होकर अत्यत रोचक रूप धारण करके हमारे सामने आती है । कहानी की सफलता घटना की वास्तविकता पर उतना नही जितना पाठको की सहानुभूति प्राप्त करने मे रहती है । कहानी का ध्येय मनोरजन के साथ समाज के लिए हितकर होना भी है । इसीलिये उसे सर्वदा हमारे जीवन की स्वाभाविकता का उल्लघन न करते हुये कला के साचे में ढलकर रोचक और प्रभावोत्पादक होना चाहिये ।

उपन्यास और कहानी जीवन की एक झलक मात्र है। उपन्यास मे हम जितने विस्तार के साथ बढते है कहानी मे नही जा सकते। इसलिये अच्छी कहानी के लिए घटनाओ की श्रृंखला बहुत लबी न होनी चाहिए। समय का भी ध्यान आवश्यक है। कहानी के लिए घटित होने वाला समय बहुत लंबा न होना चाहिए। समय की लबान कहानी मे शिथिलता ला देती है। कम समय और कम घटनायें कहानीकार को कहानी के सर्वांगीण सौंदर्य के बढाने का अवसर प्रदान करती है।

कितने समय की घटनाओ का वर्णन कहानी मे लाया जाय—इसके लिए कोई नियम नहीं हो सकता परन्तु इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि केवल मुख्य मुख्य घटनाओ का ही वर्णन किया जाय।

कहानी का हृदयग्राही होना ही उसकी सफलता है। जिस ध्येय और भावना से जिस स्थल पर लेखक ने जो कुछ लिखा है यदि उसी रूप से पाठक ने उन्हे ग्रहण न कर पाया तो कहानी सफल नही मानी जा सकती। यह तभी सभव है जब प्रत्येक घटना और पात्र का चित्रण स्वाभाविक हुआ हो। लेखक जब तक अपने को कहानी मे वर्णित प्रत्येक परिस्थिति और पात्र के रूप मे रखने मे समर्थ नही है तब तक उसकी लिखी हुई कहानी आकर्षक नही हो सकती।

कहानी का कथानक (Plot) पहिले से निश्चित होना चाहिए। कुछ लेखक बिना पूरा कथानक समक्ष रखे ही लिखना प्रारभ कर देते है। परिणाम यह होता है कि वे अँधेरे मे टटोलते हुए चलते है और बहुधा मार्ग भ्रष्ट हो जाते है।

कहानी मे पात्र भी जितने ही कम हों वह उतनी ही अच्छी होगी। अधिक पात्रो का समावेश उपन्यास मे हो सकता है। उसे लेखक अपनी सुविधानुसार उपन्यास की समाप्ति के पूर्व ही जहाँ चाहे छोड़ सकता है।

परन्तु कहानी में यह बात सभव नही। उसमें के सभी पात्र अन्त-तक चलेंगे ही।

कथानक का क्या रूप होना चाहिए—यह एक आवश्यक प्रश्न है। साधारण श्रेणी के पाठक के लिए तो कथानक मौलिक और सुलझा हुआ होना चाहिए। उनके लिये शैली और कला पीछे आते है और कथानक पहिले। कहानी केवल घटनाओ का क्रम नही है। उसमे एक ऐसा अन्त होना चाहिए जिस तक पहुँचने मे सभी घटनाये सहायक हो और जिस तक पहुँचकर उसके आगे जाने की अपेक्षा न करे। यही क्लाइमेक्स या परिणाम कहलाता है। इसका प्रभावोत्पादक और चमत्कारपूर्ण होना अतीव आवश्यक है। कथानक का रूप विभिन्न लेखक विभिन्न प्रकार से ग्रहण करते है। कुछ किसी विषय या समस्या को कथानक बनाते है, कुछ परिस्थिति को लेकर कथानक रचते है कुछ कथानक को ही लेकर चलते और अपनी कहानी का ढाँचा तय्यार करते है, कुछ बिना कुछ सोचे ही कहानी आरम्भ कर देते है और अवसर और भविष्य के ऊपर उसे छोडकर लिखना आरभ कर देते है जहाँ अन्त हो जाय, जैसे भी अन्त हो जाय।

यह कहना कठिन है कि इसमे कौन ढग ठीक है और कौन नही। यह लेखक की योग्यता और क्षमता पर निर्भर है। कुछ लोग केवल एक पात्र को लेकर कहानी प्रारभ कर देते है। ऐसी कहानियो का ध्येय चरित्र-चित्रण होता है। कुछ लेखक स्वय ही कहानी के पात्रो मे से एक हो जाते है और अपने ही चारो ओर एक जाल सा बनाते हुए चलते है।

नये कहानी लेखक को सर्वप्रथम एक विचार निश्चित करना चाहिए। और तब उसी विचार के अनुरूप कहानी का ढाचा बनाकर लिखना प्रारभ करना चाहिए।

कथानक को भी सोचने की आवश्यकता है। यथावस्तु तो कही से भी ग्रहण की जा सकती है। परन्तु उसके लिए अन्वेषक तथा सूक्ष्म दृष्टि को

अति आवश्यकता है। यदि कहानी लेखक ने अपना मस्तिष्क विकसित कर लिया है तो मार्ग चलते भी वह अनेको कथानक प्राप्त कर सकता है। वह ढाचा मिलने के पश्चात् ही कहानीकार का कार्य प्रारभ होता है। वह अपने परिश्रम और कौशल के द्वारा उसे एक मौलिक ढाँचे में ढालकार आकर्षक बना देना है। कहानी लेखक को अपनी स्मरण-पुस्तिका मे समय समय पर उठे हुए कहानी के योग्य विचारो को अंकित करते रहना चाहिए। उसे अपने वातावरण का भी अच्छा अध्ययन करते रहना लाभ-प्रद होता है। देखते हम सभी लोग है। परन्तु यदि एक घटे टहलने के पश्चात् हमसे पूछे कि मार्ग मे हमने क्या क्या देखा और क्या विशेष बात पाई तो सभवत दो चार मोटी मोटी बातो को छोडकर हम अधिक न बतला पायें। कहानी लेखक को सदैव सजग और सचेत रहने की आवश्यकता है।

कहानी की सफलता बहुत कुछ प्रारभ पर निर्भर है। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत यहाँ भी चरितार्थ होती है। अत कहानी-कला की ओर झुकने वालो को कुछ बातो का ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि कहानी का आरभ स्पष्ट और आकर्षक होना चाहिए। कहानी के कुछ प्रारभिक वाक्यो ने ही यदि हमारे मन को अपनी ओर नही खीच लिया तो उसकी सफलता में सन्देह है। लेखक के मानस पट पर पूरी कहानी अंकित रहती है और वह उसे किसी भी प्रकार आरम्भ कर सकता है। परन्तु उसका यह समझना ठीक नहीं कि उसी के समान पाठक भी आरम्भ करते ही कहानी समझेंगे। लेखक को अपने को पाठक की स्थिति मे रखकर समझने की आवश्यकता है। तभी वह समझ पायेगा कि वह प्रारभ मे ही आकर्षक कैसे बनाई जा सकती है। किसी अतिथि के आने पर उसको प्रसन्न करने के लिए, रुच से रमाने के लिए हम घर को सुन्दर ढग से सजाते है और सबसे अधिक आकर्षक प्रवेश द्वार

तीसरी बात भाषा मे मुहाविरो का प्रयोग है । जैसे काव्य मे अलंकारो के विना सौंदर्य नही लाया जा सकता वैसे ही कहानी मे मुहाविरो के विना उसे रोचक नही किया जा सकता । उर्दू बोलने वालो की भाषा में मुहाविरो की भरमार है । इसीलिये उर्दू की कहानियाँ जन-मन को अधिक आकर्षित करती है । और इसी कारण से उर्दू साहित्य से सबध रखने वाले प्रेमचन्द की भाषा मे मुहाविरों का प्रयोग हम ठीक उसी प्रकार का पाते है । हिन्दी बोलने वाली जनता घर पर तो बोलती अपनी स्थानीय भाषा में है और लिखने के समय लिखतीहै खडी बोली। मुहाविरे अधिकतर स्थानीय और ग्रामीण भाषाओं में है उसी से हिन्दी की कहानियो मे मुहाविरो के प्रयोग अधिक नही हो पाये हैं । हमे प्रयत्नशील होना चाहिये कि अब मुहाविरो के प्रयोग को बढाये ।

कहानी में छठी बात जो ध्यान देने की है वह पात्रो को कम रखना है। बहुत से लेखक अनेक पात्रो और अनेक स्थानो का नाम कहानी मे भर देते है। परन्तु ऐसा किसी भी दशा मे न होना चाहिए। पाठक धीरे-धीरे पात्रो और स्थानो से परिचित होता है और एक छोटी सी कहानी मे बहुत अधिक पात्र ला देने मे न तो सबका चित्रण ही सुन्दर किया जा सकता है न उसका समुचित विकास ही हो पाता है। पात्रो मे नायक का भी प्रवेश यथाशीघ्र होना चाहिए। अधिक पात्र और स्थल के लोभी लेखक को कहानी की ओर न आकर उपन्यास की ओर झुकना चाहिये जिसमे तात्विक रूप मे अधिक अन्तर न होकर थोडा ही परिवर्तन लाना आवश्यक होता है।

कहानी मे हम अपनी सुविधानुसार जो चाहे नही लिख सकते। अत' कहानी की एक निश्चित रूप रेखा पहले से बनी रहनी चाहिये। उसमे अनर्गल बाते कभी भी न लानी चाहिये। रसो के निर्वाह का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि हास्यरस की कहानी है तो करुणापूर्ण वर्णन न लाना ही उत्तम है।

चतुर लेखक पात्रो के कथोपकथन द्वारा ही अपना उद्देश्य पूरा करता है। वह स्वय कुछ नही कहता। कथोपकथन जितना ही नाटकीय ढग से प्रस्तुत किया जा सके कहानी उतनी ही आकर्षक होगी।

कहानी का प्रारभ किसी घटना से हो तो वह अधिक आकर्षक हो सकती है। यकायक कोई धडाका हुवा और चारो ओर से लोग जमा हो गये। जाँचा, पूँछा और समाधान होने पर लौट गये। ठीक ऐसे ही घटना से प्रारभ होने वाले कहानी पाठको को खीच लेगी और उनकी जिज्ञासा के बल पर उन्हे अपने में व्यस्त रखती है।

इन सब बातो को ध्यान मे रखकर कहानी लेखक को आगे बढना चाहिए। परन्तु कुछ स्वाभाविक बाते भी होती है जो लेखक को सहायता देने वाली होती है। उसकी अपनी शैली और विचार धारा बहुत सी त्रुटियो के होने

पर भी कहानी को अच्छा बना सकती है। इतना अवश्य ध्यान रखना होगा कि कहानी केवल मनोरंजन का साधन नहीं है। उसके पाठक को कुछ सीख भी देनी है। परन्तु यदि हमने कहानी में ही शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया तो वह पाठक को उबाने वाली हो जायगी। अतः इस ध्येय की पूर्ति अप्रत्यक्ष और चातुर्यपूर्ण ढंग से ही होनी चाहिये।

अन्त भी कहानी का ऐसा हो जिसे पढ़कर पाठक के मन में एक अतृप्ति बनी रहे और वह अधिक कहानी पढ़ने का इच्छुक बनता जाय।

कहानी कहने के ढंग के दृष्टिकोण से देखें तो इसे दो रूपों में रखा जा सकता है। एक तो प्रथम पुरुष में और दूसरे अन्य पुरुष में। पहिले प्रकार की कहानी में उन्हीं के बीच का कोई पात्र आप बीती सुनाता चलता है। पं० सीता-रामजी चतुर्वेदीकी कहानी "मैं रूस जारहा हूँ" इसी श्रेणीकी है। दूसरे प्रकार की कहानियों में लेखक एक तटस्थ व्यक्ति के समान दूसरों पर घटने वाली घटनायें देता चलता है। दोनों ही ढंग सुन्दर हैं। चतुर लेखक जिस मार्ग को भी अपनाये कहानी के बताये हुए नियमों को दृष्टिकोण में रखता हुआ उसे सजीव और रोचक बना सकता है।

कहानियाँ कितने प्रकार की हो सकती हैं यह बतलाने के लिए पर्याप्त समय और स्थान की आवश्यकता है। हमारे सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन को उठाने के लिये जितनी बातें आवश्यक हैं उतने ही प्रकार की कहानियाँ भी हो सकती हैं; भिन्न भिन्न दृष्टिकोण रखने के कारण सभी कहानी लेखक भिन्न मार्ग का अनुसरण करते हैं। कुछ आदर्शवादी हैं, उनका विचार है कि हमारे सामने एक ऊँचा आदर्श होना चाहिये जिसे देखते हुये हम उसकी प्राप्ति के लिये आगे बढ़ने में प्रयत्नशील हो सकें। श्री वृन्दावनलाल वर्मा की कहानी इसी प्रकार की है। यथार्थवादी ऐसा समझते हैं कि जब तक समाज की गिरी हुई दशा का यथार्थ चित्रण प्रभावोत्पादक ढंग से पाठक के सामने न रखा जाय और वे उससे विचलित होकर उन बुराइयों को

दूर करने के लिये स्वय उत्साहित होकर आगे न बढे ऊचे आदर्श व्यर्थ है। हिन्दी साहित्य मे उग्र जी की कहानियाँ इसी श्रेणी मे आती है।

शैली के अनुसार भी कहानी कई प्रकार की होती है। व्यगात्मक विनोदात्मक, वर्णनात्मक, नाटकीय, तथा सस्कृतनिष्ठ इत्यादि।

इस कहानी सग्रह मे इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि कहानियाँ भिन्न भिन्न शैली तथा आदर्श की हो। कोई भी कहानी इसमे ऐसी नही ली गई है जो किसी विशेष दृष्टिकोण को उपस्थित न करती हो एक विहगम दृष्टि डालने से हमे तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि चतुर्वेदी जी तथा मुशी जी की कहानी व्यगात्मक है, गौड जी की विनोदात्मक है, उमा कुमारी ने वर्णनात्मक शैली अपनायी है, कमलिनी मेहता की शैली नाटकीय है। बाजपेयीजी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा ही कहानी को सजीव बना दिया है। भाषा के मुहाविरेदार रूप मे प्रेमचन्द जी की कहानी ओतप्रोत है तो सस्कृतनिष्ठ शैली का निखरा रूप करुणापति जी की कहानी मे वर्तमान है। अन्य सभी कहानियाँ इसी प्रकार की विशेषताओ से युक्त है।

आत्माराम

श्री प्रेमचन्द

वेदो ग्राम मे महादेव सुनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायवान मे प्रात से सध्या तक अगीठी के सामने बैठा हुआ खट खट किया करता था। वह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण से वह बन्द हो जाती तो जान पड़ता था कि कोई चीज गायब हो गई है। वह नित्य प्रति एक बार प्रात काल अपने तोते का पिजरा लिये, कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुधले प्रकाश मे उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देख कर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्यो ही लोगो के कानो मे आवाज आती—"सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता" लोग समझ जाते कि भोर हो गया।

महादेव का पारिवारिक जीवन सुखमय न था। उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुये थी, दर्जनो नाती पोते थे। लेकिन उसके बोझ को हल्का करने वाला कोई न था। लडके कहते जब तक दादा जीते है हम जीवन का आनन्द भोग ले, फिर तो वह ढोल गले पडेगा ही। बेचारे महादेव को कभी कभी निराहार ही रहना पडता। भोजन के समय उसके घर मे साम्यवाद का ऐसा गगन भेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता। उसका व्यावसायिक जीवन और भी अशान्ति-कारक था। यद्यपि वह अपने काम में निपुण था, उसकी खटाई औरों से कही ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियायें कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थी, तथापि उसे आये दिन शक्की और धैर्य-शून्य ग्राहकों के अप-शब्द सुनने पडते थे। पर महादेव अविचलित गांभीर्य से सिर झुकाये सब

कुछ सुना करता। ज्यो ही कलह-शान्त होती अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता—"सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता" इस मन्त्र के जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शाति प्राप्त हो जाती थी।

[२]

एक दिन सयोगवश किसी लडके ने पिजरे का द्वार खोल दिया। तोता उड गया। महादेव ने जो सिर उठाकर पिजडे की ओर देखा तो उसका कलेजा सन्न हो गया। उसने फिर पिजडे की ओर देखा, तोता गायब था। महादेव घबराकर उठा और इधर उधर खपरैलो पर निगाह दौडाने लगा। उसे ससार मे कोई वस्तु प्यारी थी तो यही तोता था। लडके-वालो, नाती-पोतो से उसका जी भर चुका था। लडको की चुलबुल से उसके कार्य मे विघ्न पडता था। बेटो से उसे प्रेम न था, इसलिए कि उनके कारण अपने आनन्दमयी कुल्हडो से उसे वञ्चित रह जाना पडता था। पडोसियो से उसे चिढ थी, इसलिए कि वे उसकी अगीठी से आग निकाल ले जाते थे। ऐसी दशा मे तोता ही उसके लिए आधार था।

तोता एक खपरैल पर बैठा था। महादेव ने पिजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा—"आ, आ, सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।" लेकिन गाव और घर के लडके एकत्र होकर चिल्लाने और तालियाँ बजाने लगे। ऊपर से कौवो ने काँव काँव की रट लगाई। तोता उडा और गाँव से बाहर निकल कर एक पेड पर जा बैठा। महादेव खाली पिजडा लिये उसके पीछे दौडा, हाँ सचमुच दौडा। लोगो को उसकी द्रुतगामिता पर अचम्भा हो रहा था। मोह की इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नही की जा सकती।

दोपहर हो गया था। किसान लोग खेतो से चले आ रहे थे। उन्हे विनोद का अच्छा अवसर मिला। महादेव को चिढाने मे सभी को मजा

आता था। किसी ने ककड फेके, किसी ने तालियाँ वजाई। तोता फिर उड़ा और यहाँ से दूर आम के वाग में एक पेड की फुनगी पर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजरा लिये मेढ़क की भाँति उचकता हुआ चला। वाग मे पहुँचा तो पैर के तलुओं से आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ तो फिर पिंजरा उठाकर कहने लगा—"सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।" तोता फुनगी से उतर कर नीचे एक डाल पर बैठ गया, किंतु महादेव की ओर सशक नेत्रों से ताकता रहा। महादेव पिंजडा छोडकर एक पेड की आड में हो रहा। तोते ने चारो ओर देखा और फिर आकर पिंजरे के ऊपर आसन लिया। महादेव का हृदय उछलने लगा। वह धीरे धीरे पिंजरे के समीप आया और लपका कि तोते को पकड ले, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड पर जा बैठा।

साँझ तक यही हाल रहा। तोता कभी इधर, कभी उधर उड़ता, कभी अपनी पीने की प्याली तो कभी भोजन को देखता और उड जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था, तो तोता मूर्तिमयी माया। शाम हो गई और माया मोह का सग्राम अन्धकार में विलीन हो गया।

[२]

अपनी सजीवता का लेशमात्र भी भान न होता था। तोता ही वह वस्तु थी जो उसे अपनी चेतना का स्मरण दिलाती थी। उसका हाथ से जाना जीव का शरीर छोडकर जाना था।

महादेव दिन भर का भूखा, प्यासा, थका-माँदा रह कर कभी कभी झपकियाँ ले लेता था, किन्तु क्षण मे फिर चौक कर आँख खोल लेता और उस विस्तृत अन्धकार मे उसकी आवाज सुनाई देती—"सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।"

आधी रात गुजर गई थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौका तो देखा कि एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक धुँधला दीपक जल रहा है और कई आदमी बैठे हुये बातचीत कर रहे है। वे सब चिलम पी रहे थे। तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया। वह उच्च स्वर से बोल उठा—"सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।" और उन आदमियो की ओर चिलम पीने चला। किन्तु जिस प्रकार बन्दूक की आवाज सुनकर हिरन भागते हैं उसी प्रकार उसे आते देखकर वे सबके सब उठकर भागे। महादेव चिल्लाने लगा—"ठहरो ठहरो।"

यकायक उसे ध्यान आ गया, ये सब चोर हैं। वह जोर से चिल्लाया—"चोर, चोर, पकडो!" चोरो ने पीछे फिरकर भी न देखा।

महादेव दीपक के पास गया तो उसे एक कलसा रखा हुआ मिला। यह मोरचे से काला हो रहा था। महादेव का हृदय उछलने लगा। उसने कलसे मे हाथ डाला तो मोहरे थी। उसने एक मोहर बाहर निकाली और दीपक के उजाले मे देखा, हाँ मोहर ही थी। उसने तुरन्त कलसा उठाया, दीपक बुझा दिया और पेड के नीचे छिपकर बैठ गया। वह साधु से चोर बन गया।

उसे फिर सन्देह हुआ कि कहीं फिर चोर लौट न आवें और अकेला पाकर मुझसे मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहरें कमर में बाँध लीं और फिर एक सूखी लकड़ी से जमीन की मिट्टी हटाकर कई गड्ढे बनाये और उसे मोहरों से भरकर मिट्टी से ढँक दिया।

[४]

महादेव के अन्तः नेत्रों के सामने अब एक दूसरा ही जगत था। चिन्ताओं और कल्पनाओं से परिपूर्ण। यद्यपि अभी इस कोष के हाथ से निकल जाने का भय था मगर अभिलाषाओं ने अपना काम आरंभ कर दिया था। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक बढ़िया दुकान खुल गई और निज संबंधियों से फिर नाता जुड़ गया। जब विलास की सामग्रियाँ एकत्रित हो गईं तो तीर्थ-यात्रा पर चले और लौटकर बड़े समारोह से यज्ञ और ब्रह्म भोज हुआ। इसके पश्चात् एक शिवालय और एक कुआँ बन गया, उद्यान और उसमें कथा पुरान का आयोजन भी हो गया। साधु-सत्कार भी होने लगा।

अकस्मात उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायँ तो मैं भागूँगा कैसे? उसने परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा चला गया। जान पड़ता था उसके पैरों में पर लग गये हैं। चिन्ता शान्त हो गई। इन्हीं कल्पनाओं में रात व्यतीत हो गई। उषा का आगमन हुआ, हवा जागी, चिड़ियाँ गाने लगीं। सहसा महादेव के कानों में आवाज आई—

"सत गुरुदत्त शिवदत्त दाता। राम के चरण में चित्त लागा।"

यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था। दिन में सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुँह से निकलते थे पर उनका धार्मिक भाव कभी उसके अन्तःकरण को स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजे से राग निकलता है, उसी प्रकार उसके मुँह से यह बोल निकलता था, निरर्थक और प्रभाव शून्य।

तब उसका हृदयरूपी वृक्ष पत्र पल्लव विहीन था । यह निर्मल वायु उसे गुंजारित न कर सकती थी । पर अब उस वृक्ष मे कोपले और शाखाये निकल आयी थी । इस वायु-प्रवाह से वह झूम उठा, गूँज उठा ।

अरुणोदय का समय था । प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश मे डूबी हुई थी । उसी समय तोता परो को फैलाये हुए ऊँची डाली से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे, और आकर पिंजडे मे बैठ गया । महादेव प्रफुल्लित होकर दौडा और पिंजडे को उठाकर बोला "आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया । अब तुम्हे चादी के पिंजडे मे रखूँगा और सोने से मढ दूँगा ।" उसके रोम रोम से परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी । प्रभु तुम कितने दयावान हो । यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नही तो मुझ जैसा पापी, पतित प्राणी कब इस कृपा के योग्य था । इन पवित्र भावो से उसकी आत्मा विह्वल हो गई, वह अनुरक्त होकर बोल उठा—

"सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता । राम के चरण मे चित्त लागा ।"

उसने एक हाथ मे पिंजडा लटकाया, बगल मे कलशा दबाया और घर आया ।

[५]

महादेव घर पहुँचा तो अभी कुछ अँधेरा था । रास्ते मे एक कुत्ते के सिवा और किसी से भेट न हुई और कुत्तो को मोहरो से प्रेम नही होता । उसने कलसे को एक नॉद मे छिपा दिया और उसे कोयले से अच्छी तरह ढांक कर अपनी कोठरी मे रख आया । जब दिन निकल आया तो वह सीधे पुरोहित जी के घर पहुँचा । पुरोहित जी पूजा पर बैठे सोच रहे थे—कल ही मुकदमे की पेशी है और अभी तक हाथ मे कौडी भी नही । जजमानो मे कोई साँस भी नही लेता । इतने मे महादेव ने पालागन किया । पण्डित जी

ने मुँह फेर लिया; यह अमगल मूर्ति कहाँ से आ पहुँची, मालूम नहीं आज दिन भर दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रुष्ट होकर पूछा—"क्या है जी? क्या कहते हो, जानते नहीं कि हम इस बेला पूजा पर रहते हैं?"

महादेव ने कहा—"महाराज! आज मेरे यहाँ सत्यनारायण की कथा है।"

पुरोहित जी विस्मित हो गये, कानों पर विश्वास न हुआ। महादेव के घर कथा होना उतनी असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिये कुछ निकालना।

पूछा—"आज क्या है?"

महादेव बोला—"कुछ नहीं, ऐसी ही इच्छा हुई कि आज भगवान की कथा सुन लूँ।"

प्रभात ही से तैयारी होने लगी। वेदो और अन्य निकटवर्ती गावों में सुपारी फिरी। कथा के उपरान्त भोज का भी न्योता था। जो सुनता, आश्चर्य करता। यह आज रेत में दूब कैसे जमी।

संध्या समय जब सब लोग जमा हो गये, पण्डित जी अपने सिंहासन पर विराजमान हुये, तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वर में बोला—"भाइयो, मेरी सारी उमर छल कपट में कट गई। मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दिया, कितने खरे को खोटा किया, पर अब भगवान ने मुझपर दया की है, मेरे मुँह के कालिख को मिटा देना चाहते हैं। मैं सभी भाइयों से नम्रता-पूर्वक कहता हूँ कि जिनका मेरे जिम्मे जो कुछ आता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल को खोटा कर दिया हो वह आकर अपनी एक एक कौड़ी चुका ले, अगर कोई यहाँ न आ सका हो तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिये, कल से एक माह तक जब जी चाहे आवे और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही साखी का कोई काम नहीं।" सब लोग सन्नाटे में आ गये। कोई मार्मिक भाव से सिर हिला कर बोला—"हम कहते न

थे ?" किसी ने अविश्वास से कहा—"क्या खाके भरेगा, हजारो का टोटल हो जायगा।"

एक ठाकुर ने ठठोली की—"और जो लोग सुरधाम चले गये ?"

महादेव ने उत्तर दिया—"उनके घरवाले तो होगे।"

किन्तु इस समय लोगो की वसूली की इतनी इच्छा न थी जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहा से गया। परन्तु किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ। देहात के आदमी थे, गडे मुर्दे उखाड़ना क्या जाने। फिर प्राय लोगो को याद भी न था कि उन्हे महादेव से क्या पाना है और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल चूक हो जाने का भय उनका मुँह बन्द किये हुये था। सबसे बडी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हे वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहितजी बोले—"तुम्हे याद है, मैंने तुम्हे एक कठा बनाने के लिये सोना दिया था और तुमने कई मासे तौल मे उडा दिये थे।"

महादेव—"हाँ याद है, आपका कितना नुकसान हुआ होगा ?"

पुरोहित—"पचास से कम का न होगा।"

महादेव ने कमर मे से दो मोहरे निकाली और पुरोहितजी के सामने रख दी।

पुरोहितजी की लोलुपता पर टीकाये होने लगी। यह बेईमानी है, बहुत हो तो दो, चार रुपयो का नुकसान हुआ होगा। बेचारे से पचास ऐंठ लिये। नारायण का भी डर नही। बनने को तो पण्डित, पर नियत ऐसी खराब, राम ! राम !!

लोगो को महादेव पर एक श्रद्धा सी हो गई। एक घटा बीत गया, पर उन सहस्रो मनुष्यो मे से एक भी न खडा हुआ। तब महादेव ने पुन. कहा—"मालूम होता है, आप लोग अपना अपना हिसाब भूल गये है। इसलिये आज कथा होने दीजिये, मै एक महीने तक आपकी राह देखूँगा।

इसके पीछे तीर्थयात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयो से मेरी विनती है कि आप सब मेरा उद्धार करें।"

एक माह तक महादेव लेनदारो की राह देखता रहा। रात मे उसे चोरो के भय से नींद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराब का चस्का भी छूटा। साधु अभ्यागत जो द्वारपर आ जाते उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर दूर तक उसका सुयश फैल गया। यहा तक कि महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी अपना हिसाब चुकाने न आया। अब महादेव को ज्ञात हुआ, ससार में कितना सद्व्यवहार है। अब उसे मालूम हुआ कि ससार बुरो के लिये बुरा है पर अच्छो के लिये अच्छा है।

इस घटना को हुये पचास वर्ष बीत चुके हैं। आप वेदो जाइये तो दूर ही से सुनहला कलस दिखाई देता है। यह ठाकुर द्वारे का कलस है। उसमें मिला हुआ एक पक्का तालाब है जिसमें खूब कमल खिले रहते है। उसकी मछलियां कोई नही पकड़ता। तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम का स्मृति चिह्न है। उसके सबध में विभिन्न किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कोई कहता है, उसका रत्नजटित पिंजरा स्वर्ग को चला गया, कोई कहता है कि वह सत्त गुरुदत्त कहते हुये अंतर्ध्यान हो गया। पर यथार्थ यह है कि उस पक्षी रूपी चन्द्र को किसी बिल्ली रूपी राहू ने ग्रस लिया था। लोग कहते है, आधीरात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है—

"सत्त गुरदत्त शिवदत्त दाता।
राम के चरन मे चित्त लागा।"

महादेव के विषय में भी कितनी ही जन श्रुतिया है। उनमे सबसे मान्य यह है कि आत्मारामके समाधिस्थ होने के बाद वह कई सन्यासियोंके साथ हिमालय चले गये और वहा से लौटकर न आये। उनका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया!!

मिठाई वाला

श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी

बहुत ही मीठे स्वरो के साथ वह गलियो मे घूमता हुआ कहता—"बच्चो को बहलाने वाला, खिलौने वाला ।"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र किन्तु मादक मधुर ढग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते । उसके स्नेहाभिषिक्त कण्ठ से फूटा हुआ उपर्युक्त गान सुनकर निकट के मकानो मे हलचल मच जाती थी । छोटे छोटे बच्चो को गोद मे लिये हुए युवतियाँ चिको को उठाकर छज्जो पर से नीचे झाँकने लगती । गलियो और उनके अन्तर्व्यापी उद्यानो मे खेलते और इठलाते हुए बच्चो का झुण्ड उसे घेर लेता । और तब वह खिलौनेवाला वही कही बैठकर खिलौने की पेटी खोल देता ।

बच्चे खिलौने लेकर पुलकित हो उठते । वे पैसे लाकर खिलौने का मोल भाव करने लगते । पूँछते—"इछका दाम क्या है ? औल इछका ? औल इछका ?" खिलौने वाला बच्चो को देखता, उनकी नन्ही नन्ही उँगलियो और हथेलियो से पैसे ले लेता और बच्चो के इच्छानुसार उन्हे खिलौने दे देता । खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने कूदने लगते और तब फिर खिलौनेवाला उसी प्रकार गाकर चल देता—"बच्चो को बहलाने वाला, खिलौने वाला ।" सागर की हिलोरो की भाँति उसका गान अपनी मादकता गली भर के मकानो मे, इस ओर से उस ओर तक लहराता हुआ पहुँचता और खिलौनेवाला आगे बढ जाता ।

राय विजय बहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आये । वे दो बच्चे चुन्नू और मुन्नू थे । चुन्नू जब खिलौने ले आया तो बोला—"मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ ?"

मुन्नू बोला—"औल मेला आती कैछा छुन्दल ऐ ?"

दोनो अपने हाथी घोडे लेकर घर भरमे उछलने लगे। इन बच्चो की माँ रोहिणी कुछ देर तक खडे खडे खेल देखती रही। अन्त मे दोनो बच्चो को बुलाकर उन्होने पूछा—"ओ चुन्नू, मुन्नू ये खिलौने तुमने कितनेमें लिये है ?

मुन्न बोला—"दो पेछे में थिलौने वाला दे गया ये।"

रोहिणी सोचने लगी—इतना सस्ता कैसे दे गया है ! कैसे दे गया है इसे तो वह ही जाने। पर दे गया है यह निश्चय है। जरा सी बात ठहरी, रोहिणी अपने काम मे लग गई। फिर कभी उसे इस जरा सी बात पर विचार करने की आवश्यकता ही क्यों पडती ?

[२]

छै महीने बाद—

नगर भर में दो ही चार दिनों मे एक मुरलीवाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—भई वाह ! मुरली बजाने मे यह एकही उस्ताद है। मुरली बजाकर, गाना सुनाकर वह मुरली बेचता भी है। और वह भी दो-दो पैसे। भला इसमे उसे क्या मिलता होगा। मेहनत भी तो न आती होगी।

एक ने पूछ लिया—"कैसा है वह मुरलीवाला ? मैंने तो देखा नही है।

उत्तर मिला—"उमर तो अभी उसकी अधिक न होगी। यही तीस-बत्तीस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफा बांधता है।"

"वही तो नहीं जो पहिले खिलौने बेचा करता था ?"

"क्या वह पहिले खिलौने भी बेचा करता था ?"

"हाँ । जो आकार प्रकार तुमने बतलाया उसी प्रकार का वह भी था।"

"तो वही होगा । पर भई है वह एकही उस्ताद ।"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरलीवाले की चर्चा होती । प्रति दिन नगर की प्रत्येक गली मे उसका मादक मृदुल स्वर सुनाई पडता—"बच्चो को बहलाने वाला । मुरलिया वाला ।"

रोहिणी ने भी मुरली का यह स्वर सुना । तुरन्त ही उसे खिलौने वाले का स्मरण हो आया। उसने मन ही मन कहा—"खिलौने वाला भी इसी प्रकार गा-गाकर खिलौने बेचता था ।"

वह उठकर अपने पति विजय बाबू के पास गई । बोली—"जरा उस मुरलीवाले को बुलाओ तो, चुन्नू मुन्नू के लिये ले लूँ । क्या जाने वह फिर इधर आये, न आये। बच्चे भी जान पडता है पार्क मे खेलने निकल गये है ।"

विजय बाबू एक समाचार पत्र पढ रहे थे। उसी तरह वे उसे लिये हुए वे दरवाजे पर आकर मुरलीवाले से बोले—"क्यो भई, किस तरह देते हो मुरली ?"

किसी की टोपी गली मे गिर पडी । किसी का जूता पार्क मे ही छूट गया। किसी की सुथनी ही ढीली होकर लटक आई थी। इस तरह दोडते हाँफते हुए बच्चो का झुण्ड आ पहुँचा । एक स्वर से सब बोल उठे—"अम वी लेदे मुल्ली, और अम वी लेदे मुल्ली ।"

मुरलीवाला हर्ष गद्गद् हो उठा—"सब को देगे भैय्या, जरा रुको, जरा ठहरो, एक एक को लेने दो। अभी इतनी जल्दी हम कही लौट थोडे ही जायेगे। बेचने तो आये ही है। और है भी मेरे पास एक दो नही, पूरी सत्तावन । . हाँ बाबूजी ! क्या पूछा था आपने ? कितने मे दी । दी तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से है, पर आपको दो-दो पैसे मे ही दे दूंगा ।"

विजय बाबू भीतर बाहर दोनो रूपो मे मुस्करा दिये। मन-ही-मन कहने लगे—"कैसा ठग है!" देता तो सब को इसी भाव से है, पर उल्टा एहसान मुझी पर लाद रहा है। फिर बोले—"तुम लोगो की झूठ बोलने की आदत होती है। देते होगे सब को दो-दो पैसे मे पर एहसान का बोझ मेरे ऊपर लाद रहे हो।"

मुरलीवाला एक दम अप्रतिभ हो उठा। बोला—"आपको क्या पता बाबूजी, कि इनकी असली लागत क्या है। यह तो ग्राहको का दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि ही उठाकर चीज क्यो न बेचे, पर ग्राहक यही समझते है कि दूकानदार मुझे लूट रहा है। आप भला काहे को विश्वास करेगे। लेकिन सच पूछिये तो बाबूजी, इनका दाम दो ही पैसे है। आप कही से भी ये मुरलियाँ दो-दो पैसे में नही पा सकते। मैने तो पूरी एक हजार बनवाई थी, तब मुझे इस भाव पडी है।"

विजय बाबू बोले—"अच्छा-अच्छा, मुझे ज्यादा वक्त नही है, जल्दी मे दो ठो निकाल दो।"

दो मुरलियाँ लेकर विजय बाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गये।

मुरलीवाला देर तक उन बच्चो के झुण्ड मे मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रग की मुरलियाँ थी। बच्चे जो रग पसन्द करते, मुरलीवाला उसी रंग की मुरली निकाल देता।

"यह बडी अच्छी मुरली है, तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू, तुम्हारे लायक तो बस यह है। . .. हाँ भैया, तुमको वही देगे। यह लो। ... तुमको वैसी न चाहिये, ऐसी चाहिये? —यह नारंगी रग की है? अच्छा वही लो। ... पैसे नही है। अच्छा अम्मा से पैसे ले आओ। मै अभी बैठा हूँ। . ... तुम ले आये पैसे? . अच्छा यह लो, तुम्हारे लिये मैने पहिले से ही निकाल रखी थी। . तुमको पैसे नही मिले! तुमने अम्मा से ठीक तरह से माँगे न होगे! धोती पकड के पैरो से लिपटकर,

अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं बाबू ! हाँ फिर जाओ। अबकी अवश्य मिल जायेगे . दुअन्नी है ? तो क्या हुआ ये छै पैसे वापस हुए । ठीक हो गया न हिसाब ? .. मिल गये पैसे ! देखो, मैंने कैसी अच्छी तरकीब बतलाई। अच्छा अब तो किसी को नही लेना है ? सब ले चुके ? तुम्हारी माँ के पास पैसे नही हे ? अच्छा तुम भी यह लो। . अच्छा तो अब मैं चलता हूँ ।

इस प्रकार मुरलीवाला फिर आगे बढा ।

[३]

आज अपने मकान मे बैठी हुई रोहिणी मुरलीवाले की सारी बाते सुनती रही। आज भी उन्होंने अनुभव किया कि बच्चो के साथ इतने प्यार से बाते करने वाला फेरी वाला पहले कभी नही आया—फिर वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है और आदमी भी कैसा भला जान पडता है ? समय की बात है जो बेचारा इस तरह मारा मारा फिरता है। पेट जो कराये सो थोडा।

इसी समय मुरलीवाले का क्षीण स्वर निकट ही दूसरी गली मे सुनाई पडा—बच्चो को बहलानेवाला, मुरलीवाला !

रोहिणी इसे सुनकर कहने लगी मन ही मन—"स्वर कैसा मीठा हे इसका ? बहुत दिनो तक रोहिणी को मुरलीवाले का यह मीठा स्वर और उसकी बच्चो के प्रति स्नेह-सिक्त बाते याद आती रही। महीने के महिने आये और चले गये, पर मुरलीवाला न आया। फिर धीरे धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण होने लगी ।

[४]

आठ मास बाद—

सरदी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके अपने मकान की छत पर

चढ़कर आजानुविलम्बित केश-राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलानेवाला, मिठाई वाला।"

मिठाईवाले का स्वर परिचित था, झट से रोहिणी नीचे उतर आई। इस समय उसके पति मकान में न थे। हाँ उनकी वृद्धा दादी थीं। रोहिणी उनके निकट आकर बोली—"दादी चुन्नू मुन्नू के लिये मिठाई लेनी है। जरा कमरे में चलकर ठहराओ तो। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। जरा हटकर मैं भी चिक की आड़ में बैठी रहूँगी।

दादी उठकर कमरे में आकर बोली—"ए मिठाई वाले! इधर आना। मिठाईवाला निकट आगया। बोला—"माँ, कितनी मिठाई दूँ? नई तरह की मिठाइयाँ हैं, रंग बिरंगी, कुछ कुछ खट्टी, कुछ कुछ मीठी और जायकेदार। बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे बड़े चाव से खाते हैं। इन गुणों के सिवा ये खाँसी को भी दूर करती हैं। हाँ कितनी दूँ? चपटी, गोल और पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।"

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती हैं। भला पच्चीस तो देते।"

मिठाईवाला—"नहीं दादी अधिक नहीं दे सकता। इतनी भी कैसे देता हूँ यह अब मैं आपको क्या ....। खैर, मैं अधिक तो न दे सकूँगा।"

रोहिणी दादी के पास ही बैठी थी। बोली—"दादी, फिर भी काफी सस्ती दे रहा है। चार पैसे की ले लो। ये पैसे रहे।"

मिठाईवाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"तो चार पैसे की दे दो। पच्चीस न सही, बीस ही दो। अरे हाँ! मैं बूढ़ी हुई मोल भाव तो अब मुझे ज्यादा करना भी नहीं आता।" कहते हुए दादी के पोपले मुँह की जरासी मुस्कराहट भी फूट निकली।

मिठाईवाला

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी इससे पूछो, तुम इस शहर में और भी कभी आये थे, या पहिली ही बार आये हो। यहा के निवासी तो तुम हो नही।"

दादी ने इस प्रश्न को दुहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाईवाले ने उत्तर दिया—"पहिली वार नही, और भी कई वार आ चुका हूँ।"

रोहिणी चिक की आड से वोली—"पहिले यही मिठाई वेचते हुए आये थे या और कोई चीज लेकर?"

मिठाईवाला हर्ष, विस्मय और संशय से भरकर वोला—"इससे पहिले मुरली लेकर आया था, और उससे भी पहिले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी बाते पूछने के लिये अस्थिर अधीर हो उठी। वोली—"इन व्यवसायो में भला तुम्हे क्या मिलता होगा?"

वह वोला—"मिलता तो क्या है, यही खाने भर को मिल जाता है। कभी नही भी मिलता है। पर सतोष और धीरज और कभी कभी असीम सुख अवश्य मिल जाता है। और यही म चाहता भी हूँ।"

"सो कैसे? वह भी वताओ।"

"अब व्यर्थ मे उन वातो की चर्चा क्यो करूँ। उन्हे आप जाने ही दे। उन वातो को सुनकर आपको दुख होगा।"

"जब इतना वताया है तो और भी वता दो। मै बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्जा न होगा। और भी मिठाई मै ले लूँगी।"

अतिशय गभीरता से मिठाईवाले ने कहा—

मै भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाडी-घोडे, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो वच्चे थे। मेरा वह सोने का ससार था। वाहर सपत्ति और भीतर सासारिक सुख था। स्त्री सुन्दर थी, मेरा प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे जैसे सोने के खिलौने।

उनकी अठखेलियो से घर मे कोलाहल मचा रहता था। समय की गति—विधाता की लीला! अब कोई नही है। दादी, प्राण निकाले नही निकले। इसीलिये उन्हीं बच्चो की खोज मे निकला हूँ। वे सब अन्त मे होगे तो यही कही। आखिर कही न कही तो जन्मे ही होगे। उस तरह रहता तो घुल घुलकर मरता। इस तरह सुख-सन्तोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन मे कभी-कभी अपने उन बच्चो की एक झलक सी मिल जाती है ऐसा जान पड़ता है जैसे वे इन्ही मे उछल कूदकर हँस खेल रहे हैं। पैसे की कमी थोड़े ही है। आपकी दया से पैसे तो काफी है। जो नही है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।

रोहिणी ने अब मिठाईवाले की ओर देखा। देखा—उसकी आँखें आँसुओ से तर हैं।

इसी समय चुन्नू मुन्नू आ गये। रोहिणी से लिपटकर उसका अचल पकड़ कर बोले—"अम्मा मिठाई।"

"मुझसे लो"—कह कर तत्काल कागज की दो पुड़ियो मे मिठाईयाँ भरकर मिठाईवाले ने चुन्नू मुन्नू को दे दी।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेक दिये।

मिठाई वाले ने पेटी उठाई और कहा—"अब इस बार ये पैसे न लूँगा।"

दादी बोली—अरे-अरे, न-न, अपने पैसे लिये जा भाई।"

किन्तु तब तक आगे सुनाई पड़ा, उसी प्रकार मादक मृदुल स्वर में—"बच्चों को बहलानेवाला, मिठाईवाला।"

स्वाभिमानी नमकहलाल

श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक"

बहुत दौडधूप और चिकित्सा होने पर भी सेठ छगामल की दशा न सुधरी। वह प्रति दिन चिता के निकट पहुँचते जा रहे थे। वृद्ध छगामल को भी यह ज्ञात हो गया था कि उनकी रोग-शय्या बहुत शीघ्र मृत्यु-शय्या मे परिवर्तित होने वाली है। इसीलिए उन्होने एक दिन अपने मुनीम मटरूमल को अपने पास बुलाया। उस समय मटरूमल की आयु ६० वर्ष के लगभग थी। मटरूमल के आने पर सेठ छगामल ने उन्हे अपने पास बिठा कर कहा—"मुनीम जी, मेरा तो अब चल-चलाव लग रहा है, न जाने किस समय दम निकल जाय। अच्छा है। मुझे सतोष है। हाथ पैर चलते चला जाऊँ। इससे अधिक और क्या चाहिये। कमाया भी खूब—खर्च भी खूब किया। भगवान का दिया सब कुछ है। नाती पोतो का मुख भी देख लिया। बस अब ईश्वर जितना शीघ्र इस कष्ट से छुडावे, अच्छा है।"

वृद्ध मुनीम के चेहरे पर शोकमय गभीरता दौड गई। कुछ रूँधे हुए कठ से उन्होने कहा—"परमात्मा आपको अच्छा कर दे। अभी आपकी उमर ही क्या है? मझसे दो-चार बरस आप छोटे ही है। जब मै हट्ठा कट्ठा बैठा हूँ तो आपका उठ खडा होना कौन आश्चर्य की बात है।"

सेठ छगामल ने विषादमय मृदु हास्य करके कहा—'मेरा उठ खडा होना असम्भव है। मृत्यु आठो पहर मेरी आँखो के सामने खडी रहती है, परन्तु न जाने वह देर क्यो कर रही है?"

मटरूमल—"आप ऐसी बाते मत सोचिये। इनके सोचने से कोई लाभ नही। अपने चित्त को प्रसन्न रखिये और विश्वास करिये कि आप अवश्य अच्छे हो जायँगे।"

सेठ छगामल कुछ अप्रसन्न होकर बोले—"मेरी दशा इन आशाओं से कभी नही सुधर सकती। ये आशाये और विश्वास मुझे मौत के पजे से नही छुड़ा सकते।"

मुनीम जी कुछ कहने को थे, परन्तु सेठ ने उन्हे हाथ के इशारे से रोक कर कहा—"मुनीम जी, आप मुझे बहलाने की चेष्टा मत कीजिये। अब लोकाचार का समय नही रहा। मैंने आपको जिस काम के लिये बुलाया है उसे सुनिये और समझिये।"

मुनीम जी—"मुझे जो आज्ञा हो वह मैं सदैव करने के लिए—"

सेठ जी—"इसके कहने की कोई आवश्यकता नही। आपको मेरे यहाँ रहते हुए २० वर्ष हो गये है। इतने दिनो मे मुझे आपके विषय मे पूरी जानकारी हासिल हो चुकी है। मुझे जितना विश्वास आप पर है, उतना चुन्नी पर भी नही।"

मुनीम जी—"यह सब आपकी कृपा—"

सेठ जी—"कृपा नही, सच्ची बात है। अच्छा जरा चुन्नू को बुलवाइये।"

मुनीम जी उठकर बाहर गये और १० मिनट बाद लौटे। उनके साथ एक नवयुवक था, जिसकी आयु पच्चीस छब्बीस वर्ष के लगभग थी। मुनीमजी तथा नवयुवक दोनो सेठ जी के पलँग के पास बैठ गये।

सेठ जी कुछ देर आँख बद किये पड़े रहे। तत्पश्चात् आँखे खोल कर बोले—"बेटा चुन्नू!"

नवयुवक—"हाँ! पिताजी!"

सेठ जी—"मैं तो अब दो ही चार दिन का मेहमान हूँ।"

मुनीम जी—"आप भी क्या बाते किया करते है। आप अवश्य अच्छे हो जायँगे। कल डाक्टर साहब कहते थे कि अभी कोई बात नही

बिगडी । आप यो ही ऐसी बाते सोच सोच कर तबियत परेशान किया करते है।"

चुन्नू—"यह आप क्या—"

सेठ जी हाथ के इशारे से पुत्र को रोक कर बोले—"पहिले मेरी सब बाते सुन लो, फिर जो जी चाहे कह लेना। हाँ, तो यदि मै चल ही बसा तो अपने पीछे तुम्हारे लिए अपने स्थान पर मुनीम जी को छोडता हूँ।"

चुन्नूमल ने कुछ चौक कर मुनीम जी की ओर देखा। मुनीम जी भी कुछ घवरा से गये।

सेठ जी—"जो वेतन इन्हे अब दिया जाता है, वह सदैव दिये जाना —चाहे ये काम करे या न करे। जब कोई बडा काम करना जो तुम्हारा समझा हुआ न हो तो पहिले मुनीम जी से सलाह ले लेना और जैसा यह कहे वैसा ही करना।"

चुन्नूमल आँखे फाड फाड कर मुनीम जी की ओर देखते जाते थे और पिताजी की बाते सुन रहे थे। मुनीम जी चुपचाप सिर झुकाये बैठे थे।

सेठजी कुछ देर दम लेकर बोले—"बस तुम्हारे लिए मेरी यह अतिम आज्ञा है। मुझे और किसी सम्बन्ध मे कुछ नही कहना है। तुम स्वय समझदार हो, जो उचित समझना करना।"

सेठजी ने फिर कुछ देर दम लिया। तत्पश्चात् बोले—"मुनीमजी! आपसे मुझे कुछ नही कहना। मुझे विश्वास है कि जो व्यवहार आप मेरे साथ करते रहे इसके साथ भी करेंगे। कारण, आप इसे सदैव ही पुत्रवत् समझते रहे है।"

मुनीम जी ने सेठजी की बात का कोई उत्तर न दिया। सेठजी ने मुनीम जी की ओर देखा। वृद्ध मुनीम की आँखो से आँसुओ की छोटी छोटी बूँदे निकल कर उनके झुर्रियाँ पडे हुए गालो पर बह रही थी। जान पडता है सेठजी को उन बूँदो के द्वारा अपनी बात का उत्तर

मिल गया, क्योंकि उन्होंने कुछ प्रसन्न मुख होकर दूसरी ओर करवट बदल ली।

[२]

सेठ जी का स्वर्गवास हुए तीन महीने बीत गये। सेठ चुन्नूमल अपने पिता के एकमात्र पुत्र होने के कारण सारे कारोबार के मालिक हुए। वृद्ध मुनीम मटरूमल जिस प्रकार बड़े सेठजी का काम करते थे, उसी प्रकार छोटे सेठ चुन्नूमल का काम-काज करने लगे। दो महीने तक तो चुन्नूमल और मुनीम जी में खूब पटी, परन्तु फिर क्रमशः चुन्नूमल को मुनीम जी काँटे की तरह खटकने लगे। इसका कारण यह था कि चुन्नूमल नवयुवक होने के कारण संसार की गति से अनभिज्ञ थे। अतएव उल्टी सीधी जो मन में आती थी करने के लिए तैयार हो जाते थे। परन्तु मुनीम जी यथाशक्ति उन्हें रोकते थे। चुन्नूमल मुनीम जी की बात मान तो लेते थे पर मुनीम जी का हस्तक्षेप उन्हें बहुत बुरा लगता था। प्राय मुनीम जी उन्हें डाँट भी दिया करते थे। डाँट से चुन्नूमल का गरम खून उबलने लगता था। परन्तु कुछ तो पिता के अंतिम वाक्य स्मरण करके और कुछ इस कारण से कि वह बाल्यावस्था से मुनीम जी के शासन में रहने के अभ्यस्त थे उन्हें कुछ अधिक कहने सुनने और मुनीम जी की बात को न मानने का साहस नहीं होता था।

एक दिन चुन्नूमल ने अपने कुछ मित्रों के साथ बाहर घूमने जाने की इच्छा की। उन दिनों काम का बड़ा जोर था। मुनीम जी ने कहा—"इस समय आपका बाहर जाना ठीक नहीं है। पन्द्रह-बीस दिन रुक जाइये। जब काम कुछ हल्का हो तब चले जाइये। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि सारे काम की देख-रेख कर सकूँ। नौकर के भरोसे इतना बड़ा काम छोड़ना भी ठीक नहीं।"

चुन्नूमल नाक भौं सिकोड कर बोले—"मैं क्या नौकरों के पीछे पीछे घूमा करता हूँ। आखिर मेरे रहने पर भी तो वे ही काम करते हैं।"

मुनीम जी—"यह ठीक है, पर मालिक के पास रहने से नोकरों को खटका रहता है और वे कोई गडबडी नही कर सकते। जब मालिक नही होता तब, उन्हे कोई डर नही रहता, वे मनमाना काम करते है।"

चुन्नूमल—"यह कुछ नही। मैं मित्रो मे चलने का पक्का वादा कर चुका हूं, इसलिए अवश्य जाऊँगा।"

मुनीम जी कुछ अप्रसन्न होकर बोले—"मैं इस समय आपको नही जाने दूँगा। मित्रो को कहने दीजिये। आदमी को अपना बनता विगडता देखना चाहिए, मित्र तो कहा ही करते हैं।"

चुन्नूमल मुनीम जी को अप्रसन्न होते देख चुप हो रहे परन्तु उन्हे उन पर बडा क्रोध हो आया।

उसी दिन मित्रो से साक्षात् होने पर शाम को चुन्नूमल ने कहा—"भाई, मैं तो इस समय तुम लोगों के साथ नहीं चल सकता।"

एक मित्र बोला—"क्यो?"

चुन्नूमल—"मुनीम जी कहते हैं—इस समय काम अधिक है, मेरा जाना ठीक नही।"

दूसरा—"और तुम उस बुड्ढे खूसट की बातों मे आ गये?"

चुन्नू—"क्या करूँ अधिक कुछ कहता हूँ तो वे अप्रसन्न होते हैं।"

पहिला—"अप्रसन्न होते हैं तो होने दो। वह है कौन? नौकर तो नौकर ही है।"

चुन्नू—"यह ठीक है परन्तु—"

तीसरा—"यार तुम खुद दब्बू हो, नहीं तो एक नौकर की क्या मजाल है जो मालिक पर दबाव डाले।"

दूसरा—"बात सच्ची तो यह है कि कहने को तो तुम स्वतंत्र हो गये। पर अब भी उतने ही परतन्त्र हो जितने बडे सेठ जी के समय मे थे। तुम कुछ बबुआ तो हो नही, जो अपना बनता बिगडता न समझो।"

तीसरा—"अरे यार बुड्ढा बडा चलता पुरजा है। वह चाहता है कि तुम उसकी मुट्ठी मे रहो, जितना पानी पिलाये उतना ही पियो।"

पहिला—"सचमुच तुम्हारे लिए यह बडी लज्जा की बात है।"

इस प्रकार सबने मिल कर चुन्नूमल को ऐसा चग पर चढाया कि उन्होने यह ठान ली कि चाहे जो कुछ हो परन्तु अब मुनीम जी के शासन मे न रहूँगा।

दूसरे दिन चुन्नूमल सवेरे मित्रो के साथ जाने की तैयारी करने लगे। मुनीम जी को जब पता लगा तो बडे कुण्ठित हुए और चुन्नू से बोले—"आखिर आपने मेरा कहा न माना और जाने की तैयारी कर ही दी।"

चुन्नूमल एक तो स्वय ही मुनीमजी से तंग आ गये थे, दूसरे मित्रो ने भी उन्हे खूब भरा था। वह मुनीम जी का तिरस्कार करने के लिये तैयार बैठे थे अतएव छूटते ही बोले—"आप होते कौन है जो आपका कहना मानूँ? मै तो केवल इसलिए कि आप पुराने है और पिता जी भी आपसे सलाह-बलाह लेने के लिए कह गये थे आपका आदर करता हूँ और आप सिर पर चढे जाते है। क्या आप चाहते है कि मै सोलह आने आपके ही कहने पर चलूँ?"

मुनीम जी इस उत्तर के लिए तैयार न थे। वह चुन्नूमल के मुँह से—उस चुन्नू के मुँह से जिसे उन्होने गोद मे खिलाया था, जिसे उन्होने सिखा पढा कर व्यापार-कला मे दक्ष किया था—यह उत्तर सुन कर स्तम्भित रह गये। स्वप्न मे भी उन्हे इस उत्तर की आशा न थी।

बडी देर तक वह खडे सन्नाटे में चुन्नूमल का मुँह ताकते रहे और यह सोचते रहे कि आज वह दिन आ गया जिसकी कल्पना मात्र से उनका

दिल दहला करता था। अत को कुछ सँभल कर नम्रस्वर मे बोले—"खैर! आप चाहे जो समझे और मेरी बातो का चाहे जो अर्थ लगाये, परन्तु मै जब तक यहाँ हूँ, जिसे अनुचित समझूँगा उस काम के लिए सदैव टोकता रहूँगा। मुझसे यह नही हो सकता कि चाहे बने या बिगड़े, मै चुपचाप बैठा बैठा देखा करूँ।"

चुन्नूमल गम्भीरता से बोले—"यदि आपसे नहीं देखा जाता तो आप अपने घर बैठे।"

चुन्नूमल के इस वाक्य से मुनीम जी का रहा-सहा आशा-सूत्र भी छिन्न-भिन्न हो गया। उनके हृदय पर चोट लगी। इधर आत्मगौरव और स्वाभिमान ने भी हृदय पर दवाव डाला। उन्होंने सिर झुका कर धीरे से कहा—"अच्छा यदि आपकी इच्छा यही है तो ऐसा ही होगा।"

चुन्नूमल मुनीम जी की इस बात से मन ही मन प्रसन्न हुए। समझा—चलो अच्छा हुआ, आँख फूटी पीर गई।"

[३]

मुनीम जी ने चुन्नूमल के यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया। कुछ लोगो ने जो चुन्नूमल और मुनीम जी दोनो के शुभचिन्तक थे, मुनीमजी को समझाया कि जाने दीजिये बच्चा है, उसकी बात का बुरा न मानिये। आप अपने स्वामी बडे सेठ जी का स्मरण कीजिये। परन्तु मुनीम जी ने इसका उत्तर दिया—"मै केवल अपने स्वामी की बात पर उनके मरने के बाद भी, उनके घर को अपना घर समझता रहा और सदैव समझता रहता। मै चुन्नू की सब बाते सह सकता था, परन्तु जब उसने मुझसे साफ साफ कह दिया 'घर बैठो' तब रह क्या गया? मेरा हृदय इसे स्वीकार नही करता कि मै अब वहाँ जाऊँ। जौहर को परखने वाला जौहरी मेरा स्वामी था, जब वही उठ गया तो अब किसके पास जाऊँ।"

लोगो ने चुन्नू को भी बहुत समझाया बुझाया कि तुम अपने दुर्व्यवहार के लिए मुनीम जी से क्षमा माँगो और उन्हे मना-मुनू कर राजी करो। परन्तु समझाने वालो की अपेक्षा भडकाने वाले अधिक थे। अतएव चुन्नूमल ने इस बात पर कुछ ध्यान न दिया। उन्होने केवल इतना किया कि मुनीम जी को पेंशन के तौर पर कुछ मासिक देना चाहा परन्तु मुनीम जी ने एक पैसा तक लेना स्वीकार न किया। उन्होने कह दिया—"मै कभी चुन्नूमल का नौकर नही रहा। जिसका नौकर था उसका था। मैं चुन्नूमल का पैसा भी नही ले सकता।"

इस प्रकार चुन्नूगल पर जो थोडा बहुत अकुश था वह भी दूर हो गया। स्वतंत्र होने से विलासप्रिय चुन्नू के खर्च बढ़ गये। उन्होने अपने कारोबार पर भी उचित ध्यान देना छोड दिया। सब काम प्राय: नौकरो ही के भरोसे पर होने लगा। साल-डेढ साल इसी प्रकार काम चला। उनके कारबार की इमारत बहुत बडी थी और नीव कमजोर हो गई थी। समय के चक्र ने उलट-फेर करके स्थिति का रग बदल दिया। चुन्नूमल की लापरवाही अन्त मे वह दिन ले ही आई जिसमे सेठ छंगामल का फर्म डगमगाने लगा। दो लाख की एक हुण्डी का भुगतान था। चुन्नूमल को उसका स्मरण ही न था और न उनके नोकरो और मुनीमो ने ही उस पर कुछ ध्यान दिया। जिस समय आदमी हुण्डी लेकर दुकान पर आया और भुगतान माँगा उस समय चुन्नूमल की आँखे खुली। उस समय उनके पास केवल पचास हजार रुपये तैयार थे। इसमे सन्देह नही कि यदि उन्हे पहिले भुगतान का ध्यान होता तो दो लाख क्या चार-छ लाख का भुगतान भी दिया जा सकता था। परन्तु दो चार दिन पहिले क्या चुन्नूमल को एक घटा पहिले तक भी उसका ध्यान न आया। अब यदि भुगतान तुरन्त नही दिया जाता तो फर्म दिवालिया हुआ जाता है। यह एक ऐसी बात थी जिससे चुन्नूमल जैसे लापरवाह का भी कलेजा हिल गया। उनके हाथ-पैर फूल गये, आँखो तले अँधेरा

छा गया। उन्होंने तुरन्त दो चार जगह जहाँ उनका व्यवहार रहता था, रुपये के लिए आदमी दौडाये। परन्तु डेढ लाख की रकम सहज मे मिल जाना कोई खेल न था। इसके अतिरिक्त लोग चुन्नूमल की दशा देख कर उनके फर्म से खटक गये थे। अतएव जो दे सकते थे उन्होने भी इनकार कर दिया। यह दशा देख कर चुन्नूमल ने अपने मुनीमो से परामर्श किया कि अब क्या किया जाय? इतना बडा फर्म दिवालिया हुआ जाता है, सेठ छगामल की सारी कीर्ति धूल मे मिली जाती है।

उनके प्रधान मुनीम ने कहा—"हम क्या बतावे ? जैसा आप उचित समझे करे।"

चुन्नूमल रुवासे-से होकर बोले—"तुम लोगों की लापरवाही से ही यह दिन देखना पडा। शोक! यदि मटरूमल होते तो क्या ऐसी स्थिति होने पाती? वह दस दिन पहिले से ही प्रबन्ध कर रखते।"

मुनीम—इधर आपने भी काम की ओर बिलकुल ध्यान न रखा। हम लोग किस-किस बात का ध्यान रखे? एक हो, दो हो तो ध्यान रखा भी जा सकता है।"

इधर भुगतान लेने वाले ने कहा—"क्यो साहब क्या देर-दार है? हुण्डी का भुगतान दीजिये।"

चुन्नू भीतर बैठे मुनीमो से झगड रहे थे। आदमी ने जाकर उनसे यह बात कही।

चुन्नूमल ने अपने आदमी से कहा—"कह दो—अभी भुगतान होता है, घबराये नही।"

आदमी को तो यह कह कर टाल दिया, और इधर मुनीम से बोले—"अब क्या किया जाय कुछ तो बताओ?"

"मेरी समझ मे यदि मटरूमल जी आये तो वह कोई न कोई युक्ति निकाल ही लेगे।" मुनीम ने उत्तर दिया।

चुन्नूमल को यह बात जँच गई। बोले—"अच्छा तो जाओ उन्हें बुला लाओ।"

मुनीम—"मेरे या किसी और के बुलाये वे कभी न आयेंगे। इस समय यदि आप ही जायँ तो वह आ सकते हैं।"

चुन्नू ने सिर झुका कर कहा—"मुझे जाना पड़ेगा ?"

यद्यपि चुन्नूमल को बहुत कुछ आशा थी कि मटरूमल के आने पर इस विपत्ति से छुटकारा होने की सम्भावना है परन्तु फिर भी उनका हृदय मटरूमल के पास जाने में पीछे हटता था।

मुनीम—"आपको जाना ही पड़ेगा। न जाइयेगा तो क्या दिवालिये बनियेगा ?"

चुन्नू—"अच्छा मैं जाता हूँ। तुम उस आदमी से कह दो मुनीम जी को बुलवाया है। उनके आने पर भुगतान दिया जायगा।"

यह कह कर चुन्नूमल ने उसी समय गाड़ी जुतवाई और मुनीम जी के मकान की ओर चले। रास्ते में वह सोचते जाते थे कि क्या मुँह लेकर उनके सामने जाऊँगा। क्या वह चले आयेंगे ? इसी प्रकार सोचते हुये चुन्नूमल मुनीम जी के मकान पर पहुँचे। जाड़े के दिन थे। शाम हो चुकी थी। मटरूमल दुलाई ओढ़े, बैठे हुक्का पी रहे थे। उनके नौकर ने आकर कहा—"मुनीम जी, सेठ चुन्नूमल मिलने आये हैं।"

मुनीम जी चौंक पड़े। बोले—"ऐं! चुन्नूमल ?"

नौकर—"जी हाँ, चुन्नूमल।"

मुनीम जी कुछ देर सन्नाटे में बैठे रहे। तत्पश्चात् बोले—"अच्छा बुला लाओ।"

चुन्नूमल सकुचाते हुए मटरूमल के सामने आये और आते ही उनके पैरों पर गिर कर रोने लगे। मटरूमल पहिले उनकी इस दशा पर बड़े आश्चर्य में पड़े; परन्तु साथ ही यह समझ कर कि इनपर इस समय

विपत्ति आ गई होगी, सप्रेम बोले—"क्यो बेटा क्या बात है ? इतने घबराये हुए क्यो हो ?"

चुन्नूमल ने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और फिर कहा—"इस समय आपकी ही सहायता से हमारी नाव इस भँवर से निकल सकती है।"

मटरूमल भी यह स्थिति सुनकर घबरा गये और बोले—"इस दशा मे मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरे यहाँ यदि रुपया होता तो मै उठा देता और जो कुछ है, वह तुम्हारा ही है। तुम्हारा उससे काम चले तो ले जाओ।"

चुन्नूमल—"मै रुपया-उपया कुछ नही जानता। किसी तरह एक या दो दिन के लिए यह अवसर टाल दीजिये। फिर तो दो लाख क्या, मै दस लाख का प्रबन्ध कर लूँगा।"

मटरूमल चुन्नू की दशा देख और उनकी विपत्ति का हाल सुनकर विचार करने मे ऐसे मग्न हो गये कि उन्हे ध्यान ही न आया कि यह वही चुन्नूमल है, जिसने उन्हे "घर बैठने" को कहा था।

मटरूमल बड़ी देर तक विचार करते रहे। तत्पश्चात बोले—"अच्छा चलो।" यह कह कर केवल दुलाई ओढे वैसे ही उठ खडे हुए। रास्ते मे चुन्नूमल मटरूमल की शान्त चित्तता पर विस्मित होकर सोचने लगे—"आखिर यह करेंगे क्या ? भुगतान तो रुपये से होगा। यह वहाँ क्या करेंगे ? यह तो ऐसे निश्चिन्त है मानो कोई बात ही न हो।"

इसी प्रकार चुन्नूमल सोचते हुए अपने यहाँ पहुँचे। मटरूमल ने गद्दी पर पहुँचते ही कहा—"भई मैं जल्दी मे चला आया, कुछ कपड़ा भी नहीं पहिना। जरा एक अगीठी मे कोयले दहका कर ले आओ। हाथ पैर ठिठुर गये।" यह कह कर वे गद्दी पर बैठ गये।

चुन्नूमल ने उनके सामने हुण्डी रखी और कहा—
हुण्डी का भुगतान करना है।"

मटरूमल बोले—"भई, जरा उँगलियाँ सीधी कर लूँ तो देखूँ। जाड़े के मारे उँगलियाँ सीधी ही नहीं होतीं।"

कुछ देर बाद दहकती हुई अँगीठी मटरूमल के सामने आई। मटरूमल कुछ देर तक उसमें हाथ सेंकने के बाद बोले—"हाँ! भई अब लाओ हुण्डी देखूँ। बुढ़ापे में शरीर की दुर्दशा हो जाती है। मेरे तो हाथ भी अब काँपने लगे।"

यह कह कर उन्होंने हुण्डी हाथ में ले ली। उसे आँखों के सामने लाये, हाथों के ठीक नीचे अँगीठी थी। अकस्मात् हाथ थर्राये, और हुण्डी हाथ से छूट अँगीठी में जा गिरी। जब तक लोगों का ध्यान उसकी ओर जाय-जाय तब तक वह जल कर राख हो गई।

भुगतान माँगने वाले के चेहरे का रंग उड़ गया। इधर चुन्नूमल का चेहरा मारे प्रसन्नता के खिल उठा।

मटरूमल किसी के बोलने के पहिले ही बोल उठे—"क्या कहूँ, हाथ ऐसे काँपे कि हुण्डी सँभली ही नहीं। खैर, कोई चिन्ता नहीं। (भुगतान लेने वाले से) तुम हुण्डी की नकल लाओ और भुगतान ले जाओ। अभी ले आओ, अभी भुगतान मिल जाय।"

भुगतान लेने वाला जल-भुन कर बोला—"नकल क्या मेरे पास धरी है। जब मँगाई जायगी तब आयगी। नकल मँगाने में तीन चार दिन लग जायँगे।"

मटरूमल—"तो भाई मैं इसे क्या करूँ। समय की बात है, हाथ काँप गया। बुड्ढा आदमी ठहरा। परन्तु इसमें क्या, तुम्हारा भुगतान तो रह ही न जायगा।"

भुगतान लेने वाला बोला—"भुगतान भला क्या रहेगा, पर तीन चार दिन का झमेला तो लग गया।"

मटरूमल—"अब तो लग ही गया, क्या किया जाय?"

भुगतान ले जाने वाला उठ खडा हुआ और बोला—"अच्छा नकल आ जाने पर भुगतान ले जाऊँगा।"

यह कह कर वह चला गया।

उसके जाते ही चुन्नूमल मटरूमल के पैरो पर गिर पडे और बोले—"धन्य है आपको। मैंने उस समय आपको नही पहिचाना था। इसीलिए पिताजी आपका इतना आदर करते थे और अत समय मुझे वह आज्ञा दे गये थे।"

अब मटरूमल को ध्यान आया कि उनके सामने वही चुन्नूमल है जिसने उनसे 'घर बैठने' के लिए कहा था। वह तुरन्त उठ खडे हुए और बोले—"सब ठीक है, पर मुझे तुम्हारे वे 'घर बैठने' वाले वाक्य अभी याद हैं। अतएव मैं यहाँ एक क्षण भी नही ठहर सकता।"

यह कह कर और शीघ्रतापूर्वक जूता पहन कर वे वहाँ से चल खड़े हुए।

शरणागत

श्री वृन्दावन लाल वर्मा

रज्जब अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी, और गाँठ मे दो-तीन सौ की बडी रकम। मार्ग बीहड था और सुनसान। ललितपुर काफी दूर था, बसेरा कही न कही लेना ही था इसलिए उसने मडपुरा-नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था। रकम पास में थी और बैलगाड़ी किराये पर करने मे खर्च ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहाँ। जात छिपाने से काम नही चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानो मे चाँदी की बालियाँ डाले थी, और पैजामा पहने थी। वह उस गाँव के बहुत से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद कर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियो से उसने रात-भर बसेरे के लायक स्थान की याचना की, किन्तु किसी ने भी मजूर न किया। उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और छिपे-लुके बेचे थे। ठहराने मे तुरन्त ही तरह तरह की खबरें फैलतीं, इसलिए सब ने इनकार कर दिया।

गाँव मे एक गरीब ठाकुर रहता था। थोडी-सी जमीन थी, जिनको किसान जोते हुए थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था।

लेकिन अपने किसानो से दो तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पडता था। छोटा सा मकान था, परन्तु उसको गाँव वाले गढी के आदर व्यंजक शब्द

से पुकारा करते थे, और ठाकुर को डर के मारे राजा शब्द से सम्बोधित करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाजे पर अपनी ज्वर ग्रस्त पत्नी को ले कर पहुँचा।

ठाकुर पौर मे बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—"दाऊ जू, एक विनती है।"

ठाकुर ने एक बिना रत्ती भर इधर उधर हिले डुले पूछा—क्या ?"

रज्जब बोला—"मै दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। मेरी औरत को जोर से बुखार आ गया है। जाडे मे बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिए रात भर के लिए कही दो हाथ जगह दे दी जाय।"

"कौन लोग हो ?" ठाकुर ने प्रश्न किया।

"हूँ तो कसाई।" रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिडगिडाहट थी।

ठाकुर की बडी आँखो मे कठोरता छा गई। बोला, "जानता है यह किसका घर है ? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तू ने ?"

रज्जब ने आशा भरे स्वर मे कहा—"यह राजा का घर है। इसीलिए शरण मे आया हूँ।"

तुरन्त ठाकुर के आँखो की कठोरता गायब हो गई। जरा नरम स्वर मे बोला—"किसी ने तुमको बसेरा नही दिया ?"

"नही महाराज !" रज्जब ने उत्तर दिया—"बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नही हुआ।" और वह दरवाजे के बाहर ही, एक कोने से चिपट कर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, काँपती हुई गठरी-सी बन कर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा—"तुम अपनी चिलम लिये हो ?"

"हाँ सरकार!" रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—"तब भीतर आ जाओ, और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के कोने मे पडे रहना।"

जब वे दोनो भीतर आ गये, ठाकुर ने पूछा—"तुम कब यहाँ से उठ कर जाओगे?" जवाब मिला—"अँधेरे मे ही महाराज! खाने के लिए रोटियाँ बाँधे हूँ, इसलिए पकाने की जरूरत न पडेगी।"

"तुम्हारा नाम?"

"रज्जब?"

[२]

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा—"कहाँ से आ रहे हो?

रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

"वहाँ किसलिए गये थे?"

"अपने रोजगार के लिए।"

"काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।"

"क्या करूँ पेट के लिए करना पडता है। परमात्मा ने जिसके लिए जो रोजगार मुकर्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है।"

"क्या नफा हुआ।" प्रश्न करने में जरा ठाकुर को सँकोच हुआ और प्रश्न का उत्तर देते रज्जब को उसने दहकर।

रज्जब ने जवाब दिया—"महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है, यो ही।" ठाकुर ने उस पर कोई जिद्द नही की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला—"बडे भोर उठ कर चला जाऊँगा। तब तक घरवाली की तबियत अच्छी हो जायगी।"

इसके वाद दिन भर के थके हुए पति-पत्नी सो गये। काफ़ी रात गये कुछ लोगों ने एक वधे इशारे से ठाकुर को वाहर बुलाया। एक फटी सी रजाई ओढे ठाकुर वाहर निकल आया।

आगन्तुको मे से एक ने धीरे से कहा—"दाऊ जू ! आज तो खाली हाथ लौटे हैं।" कल सन्ध्या का सगुन बैठा है।

ठाकुर ने कहा—"आज जरूरत थी। खैर, कल देखा जायगा। क्या कोई उपाय किया था।"

हाँ—"आगन्तुक वोला, एक कसाई रुपये की नोट वाधे इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग जरा देर मे पहुँचे। वह खिसक गया। कल देखेगे जरा जल्दी।"

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर मे कहा—"कसाई का पैसा न छूयेगे।"

"क्यो ?"

"वुरी कमाई है।"

"उसके रुपयो पर कसाई थोडे ही लिखा है।"

रुपया तो दूसरो का ही है कसाई के हाथ मे आने से रुपया, कसाई नही हुआ।"

"मेरा मन नही मानता, वह अशुद्ध है।"

"हम अपने तलवार से उसको शुद्ध कर लेगे।"

ज्यादा वहस नही हुई। ठाकुर ने सोचकर अपने साथियो को वाहर-का वाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा, कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी। ठाकुर भी सो गया।

[३]

सवेरा हो गया परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का वुखार

तो हलका हो गया था, परन्तु शरीर-भर मे पीडा थी और वह एक कदम भी नही चल सकती थी।

ठाकुर उसे वही ठहरा हुआ देख कर कुपित हो गया। रज्जब से बोला—"मैने खूब मेहमान इकट्ठा किए है। गाँव भर थोडी देर मे तुम लोगो को मेरी पौर मे टिका हुआ देख कर तरह तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ और इसी समय।"

रज्जब ने बहुत विनती की, किन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गाँव उसके दबदबे को मानता था, परन्तु अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके मन पर भी था। इसलिए रज्जब गाँव के बाहर सपत्नीक एक पेड के नीचे जा बैठा, और हिन्दू मात्र को मन ही मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर-आधी-पहर मे उसकी पत्नी की तबीयत इतनी स्वस्थ हो जायगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परन्तु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाडी किराये पर कर लेने का निर्णय किया। मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाडी ले जाने के लिए राजी हुआ। इतने मे दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को जोर का बुखार हो आया। वह जाडे के मारे थर-थर काँप रही थी। इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पडी। गाडी मे अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिए यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम से कम कँपकँपी बन्द न हो जाय।

घटे डेढ घटे बाद उसकी कँपकँपी बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाडी मे डाल दिया और गाडीवान से जल्द चलने को कहा।

गाडीवान बोला—"दिन भर तो यही लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो।"

रज्जब ने मिठास के स्वर मे उससे फिर जल्दी चलने को कहा।

वह बोला—"इतने किराये मे काम नही चल सकेगा। अपना रुपया वापिस लो। मै तो घर जाता हूँ।"

रज्जब ने दाँत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा —"भाई, आफत सबके ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देता नही। तुम्हारे भी बाल-बच्चे है। कुछ दया के साथ काम लो।

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुन कर गाडीवान को हँसी आ गई।

उसको टस से मस न होता देख कर रज्जब ने और पैसे दिए। तब उसने गाडी हाँकी।

[४]

पाँच-छ मील चलने के बाद सध्या हो गई गाँव कोई पास मे न था। रज्जब की गाडी धीरे धीरे जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार मे बेहोश सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बधी पडी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अँटी का कुछ बोझ कम कर देना पडा है—और स्मरण हो आया गाडीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही और दे देने पडे। उसे गाडीवान पर क्रोध था, परन्तु उसको प्रकट करने की इच्छा उस समय उसके मन में न थी। बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया—

"गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।"

"बहुत दूर, वही ठहरेगे।"

"किसके यहाँ ?"

"किसी के यहाँ भी नही। पेड के नीचे। कल सबेरे ललितपुर चलेगे।"

"कल का पैसा फिर माँग उठना।"

"कैसे माँग उठूँगा ? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे माँगूँगा।"

"जैसे आज गाँव मे हठ करके माँगा था। बेटा ! ललितपुर होता तो बतला देता।"

"क्या बतला देते ? क्या सेतमेंत गाडी मे बैठना चाहते थे ?"

"क्या बे। क्या रुपया देकर भी सेतमेत का बैठना कहता है ? जानता है मेरा नाम रज्जब है। अगर बीच मे गडबड करेगा तो साले को यही छुरे से काट कर कही फेक दूँगा और गाडी लेकर ललितपुर चल दूँगा।"

रज्जब क्रोध को प्रकट नही करना चाहता था। परन्तु शायद अकारण ही वह भली-भाँति प्रकट हो गया।

गाडीवान ने इधर-उधर देखा। अँधेरा हो गया था। चारो ओर सुनसान था। आसपास झाडी खडी थी, ऐसा जान पडता था कहीं से कोई निकला, और अब निकला। रज्जब की बात सुन कर उसकी हड्डी काँप गई। ऐसा जान पडा मानो पसलियो को उसकी ठंडी छुरी छू रही हो।

गाडीवान चुपचाप बैलो को हाँकने लगा, उसने सोचा—"गाँव के आते ही गाडी छोड कर नीचे खडा हो जाऊँगा, और हल्ला गुल्ला करके गाँव वालो की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुडाऊँगा। रुपये पैसे भले ही वापस कर दूँगा, और आगे न जाऊँगा। कही सचमुच मार्ग मे मार डाले!"

[५]

गाडी थोडी दूर और आगे चली होगी कि बैल ठिठक कर खडे हो गये। रज्जब सामने नही देख रहा था। जरा कडक कर गाडीवान से बोला —"क्यो बे बदमाश ! सो गया क्या ?"

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खडी हुई एक टुकडी में से किसी के कठोर कंठ से निकला—"खबरदार, जो आगे बढा।"

रज्जब ने सामने देखा कि चार पाँच आदमी बडे बडे लट्ठ बाँध कर न जाने कहाँ से आ गये हैं। उनमे तुरन्त ही एक ने बैलो की जुवारी पर एक लट्ठ पटका और दो दाये बाँये आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गये।

गाडीवान गाडी छोड कर नीचे जा खडा हुआ, बोला—"मालिक! मैं तो गाडीवान हूँ। मुझसे कोई सरोकार नही।"

"यह कौन है?" एक ने गरज कर पूँछा।"

गाडीवान की घिग्गी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए बहुत ही विनम्र स्वर मे कहा—"मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नही है। मेरी औरत गाडी मे बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिये।"

उन लोगो मे से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी तानी। गाडीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—"महाराज मुझको छोड दो। मैं तो किराये पर गाडी लिए जा रहा हूँ। गाँठ मे खाने के लिए तीन-चार आने पैसे ही है।"

"और यह कौन है। बतला।" उनमे से एक ने पूँछा।

गाडीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—"ललितपुर का एक कसाई है।"

रज्जब के सिर पर जो लाठी तानी गई थी वह वही रह गई, लाठी वाले के मुँह से निकला,—"तुम कसाई हो सच बतलाना।"

"हाँ महाराज!" रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—"मै बहुत गरीब हूँ, हाथ जोडता हूँ। मुझे मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।"

औरत जोर से कराही।

लाठी वाले उस आदमी ने अपने एक साथी के कान मे कहा—"इसका नाम रज्जब है। छोडो, चलें यहाँ से।'

उसने न माना। बोला—"इसका खोपड़ा चकनाचूर करो दाऊ जी! यदि वैसे न माने तो। असाई-कसाई हम कुछ नही मानते।"

"छोड़ना ही पड़ेगा।" उसने कहा—"इस पर हाथ नही पसारेंगे और न इसका पैसा छुयेंगे।"

दूसरा बोला—"क्या कसाई होने के डर से? दाऊ जी! आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं; मैं देखता हूँ।"

वह तुरन्त लाठी लेकर गाडी मे चढ गया। लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती मे अड़ा कर उसने तुरन्त रुपया पैसा निकाल कर दे देने का हुक्म दिया। नीचे खडे हुए उस व्यक्ति ने जरा तीव्र स्वर मे कहा—"नीचे उतर आओ, उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।"

"हो, मेरी बला से।" गाडी मे चढे हुए लठैत ने उत्तर दिया—"मैं कसाइयों की दवा हूँ। और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।"

नीचे खडे हुए उस व्यक्ति ने कहा—"खबरदार, जो उसे छुआ, नीचे उतरो नही तो तुम्हारा सिर चूर किये देता हूँ। वह मेरी शरण था।"

गाडी पर चढ़ा लठैत झख सी मार कर नीचे उतर आया।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा—"सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राहगीरो को तंग मत करो।" फिर गाडीवान से बोला—"जा रे, हाँक ले जा गाडी। ठिकाने तक पहुँचा आना, तब लौटना। नही तो अपनी खैर मत समझियो। और तुम दोनो मे से किसी ने भी कभी इस बात की चर्चा कही की तो भूसी की आग मे जला कर खाक कर दूँगा।"

गाडीवान गाड़ी लेकर बढ गया। उन लोगो मे से जिस आदमी ने गाडी पर चढ़ कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर मे कहा—"दाऊ जी! आगे से कभी आपके साथ न जाऊँगा।"

दाऊ जी ने कहा—"न आना। मै अकेला ही बहुत कर गुजरता हूँ। परंतु बुंदेला शरणागत के साथ घात नही करता, इस बात को गाँठ बाँध लेना।"

अग्निहोत्री

श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी

वह पुराणकाल का प्रतिनिधि था, मानो आर्य सस्कृति की भावना का केन्द्रस्थल हो। उसकी भौहो पर योगाभ्यास झलकना, माथे पर पिनाक जैसा तेजस्वी त्रिपुण्ड सुशोभित होता। उसके नयनो मे निर्मलता थी। उसके मुख पर मधुर शान्ति विराजती थी। उसके जिह्वाग्र पर श्रुति बैठी थी। उसके कठ मे शकर का जाप था। उसकी प्रत्येक सास मे ओकार का महामन्त्र गूँजता था।

वह था इस युग का परन्तु बीते युग की प्रतिध्वनि सी उसकी देह थी, बीसवी सदी मे भी उसका मन था मनु के काल का। वह अग्निहोत्री था, गुजरात के गाँव का एक निर्धन विप्र, परन्तु उसके जीवन मे भारत की पवित्र भावनाएँ सजीव हो उठी थी। साठ वर्षो तक जप, तप और ध्यान का सेवन कर वह शौच और सयम के शिखर पर पहुँच गया था। मन, वाणी और कर्म से वह बना रहा आर्य सस्कृति के परिपक्व फल के समान आदर्श ब्राह्मण।

गुजरात के एक कोने मे बैठा बैठा वह सनातन धर्म के पुनरुद्धार के मोहक स्वप्न देख रहा था। उसका विश्वास था कि ब्राह्मण की तपस्या पर ही सृष्टि का आधार है। उसकी धारणा थी कि ब्राह्मण के कर्म से ही धर्म का उद्धार होता है। आर्य धर्म के पुनर्जन्म का प्रथम क्षण देखने के लिए वह आतुर नेत्रो से टकटकी लगाये था और उसका श्रद्धालु हृदय आश्वासन देता कि आतुर नयन उसे देखकर अवश्य तृप्त होगे।

वह केवल कल्पना के प्रासाद ही नही बनाता था, वरन् भगीरथ प्रयत्न करके उसके गाँव का वातावरण शुद्ध और धार्मिक बनाया था और बड़े

उत्साह से अपने इकलौते बेटे को लिखा पढ़ाकर अपनी भावना का सुवास चारो दिशाओ मे फैलाने के लिए बाहर—बबई भेज दिया था। पुत्र से उसे बडी आशा थी। ब्राह्मण के शुद्ध सस्कार उसको जन्म से मिले थे। वेद और स्मृति उसके रात दिन के साथी बन गये थे। उसमे बुद्धि थी, उत्साह था। वाराह-स्वरूप लेकर अवमता को पहुंची हुई पृथ्वी का उद्धार करने की शक्ति थी, ऐसा उसका पिता मानता था।

पिता ने उसे दिग्विजय करने के लिए भेजा था। पहले तो उस विजयारभ के डके की दमदमाहट डाक के द्वारा उस तक पहुँचती और उसे बडा संतोष होता। उसका हृदय प्रफुल्ल होता और उसे ऐसा लगता कि मन की आशा फलीभूत होने का समय अत्यन निकट आ रहा है।

धर्म का उद्धार और आर्य सस्कृति का पुन.स्थापन, और चतुर्वर्ण समाज और शुद्ध तथा तपस्वी ब्राह्मण की श्रेष्ठता, सरल और सदाचारी समाज और धर्मात्मा तथा त्यागी राजा—ये वस्तुयें सिद्धि के तट पर वेग से बहती आती दिखायी पडी। वह भोला ब्राह्मण काल सागर में खिंची आती हुई बधाइयो को स्नेह से स्वीकार करने के लिए आकांक्षापूर्ण हृदय से खडा था।

परन्तु थोडे ही दिनो मे आशाजनक पुत्र का समाचार आना ही बन्द हो गया। बसन्त के प्रभातकालीन आकाश की भाँति उसके निर्मल हृदय मे शका का संचालन हो जाना, परन्तु 'मयिसर्वाणि कर्माणि संन्यास्याध्यात्मचेतसा' का मन्त्र पढकर वह हृदय को आश्वासन देना।

यदाकदा नये अशुद्ध, विदेशी वायु की कोई मन्द लहर उस अग्निहोत्रीके गाँव में आती परन्तु सनातन धर्म में उसको श्रद्धा थी, भारत के भाग्य में उसको विश्वास था, आर्यों के उत्साह और साहस पर उसे भरोसा था। अपने जैसे अनेक ब्राह्मण वीरो के परोपकारी प्रयत्नो के प्रभाव में उसका

विश्वास था। उसकी श्रद्धा थी अडिग और अगाध, भारत के भाग्य मे और भाग्य के विधाता भगवान् गोवर्द्धनधारी के वचन मे—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥

वर्षो बीत गये परन्तु एक दो पौत्रो के जन्म के शुभ समाचार के अतिरिक्त पुत्र का और वहू का अन्य कोई समाचार नही आया। फिर भी अग्निहोत्री जी के जीवन मे उमग आयी। वश-वृद्धि से आनन्द हुआ। यह सोच कर कि अपनी भावना सस्कार बढाने के साधन बढे, वह पुरातन आत्मा आनन्दमग्न हो गया। उन साधनो को सबल करने के लिए अपने पुत्रको दो चार वार जन्मभूमि मे आने को लिखा। परन्तु जब उन पत्रो का कुछ उत्तर ही नही आया तब अग्निहोत्री जी ने स्वय ही बबई जाने का निश्चय किया और इस निश्चय के परिणामस्वरूप एक दिन प्रात काल आठ बजे बडी कठिनाई से खोजकर गिरगाव के एक विशाल चाल के सामने पहुँचकर अग्निहोत्री जी खडे हो गये।

बबई आते समय मार्ग मे अग्निहोत्री जी को वहुत कष्ट सहन करना पडा था। उनको भयकर, अगम्य, असहनीय नये ससार मे होकर आना पडा था। उन्होने एक डब्बे मे अनेक वर्णो की शकर जी की वारात देखी, ब्राह्मण कहलाने वाले पुरुषो को स्टेशन पर के नल मे मुँह लगाकर पानी पीते देखा और अपने जैसे पवित्र और शुद्ध ब्राह्मण की ओर दूसरो की तिरस्कार भरी दृष्टि भी देखी।

ससार को जितना पतित उन्होने सोचा था उससे कही अधिक अधम और धर्म भ्रष्ट पाया। जिस सनातन धर्म के पुनरुत्थान को उसने अपने जीवन का सकल्प बनाया था उसका शव भी उस महात्मा के हाथ नही लगा ओर अव यह गन्दी गली, मानव जतुओ से किलकिलाती चाले और सस्कारहीन से स्त्री-पुरुषो को देखकर उसकी देह मे अज्ञात फुरफुरी छा गई।

उसने गोविन्दराम अग्निहोत्री के विषय में पाँच सात आदमियो से पूँछताँछ की और अन्त मे पता चल गया। किसी ने कोठरी दिखला दी। जिस पुत्र को वह धर्म धुरन्धर मानता था उसका यह निवास ? एक ओर शौचालयों की पक्ति थी, दूसरी ओर कोई खडा खड़ा सामने दर्पण टाँगकर हजामत कर रहा था।

अनिश्चित स्वर मे उस हजामत करनेवाले से पूछा—"गोविन्दराम अग्निहोत्री कहाँ रहता है ?" हजामत करनेवाले ने मुँह बिचकाकर तिरस्कार के स्वर मे पूछा—"क्यो क्या काम है ?"

'मुझे मिलना है।'—उसके रूखेपन से खीझकर कुछ दृढ़ता से अग्निहोत्री जी ने कहा।

'उस छोकरे से पूछो'—कहकर वह हजामत करने लगा। अग्निहोत्री ने कमरे मे बैठे एक ६-७ वर्ष के लड़के की ओर देखा। लडका धरती पर बैठा था उसके सामने एक चाय का प्याला था और उसके हाथो में न था मक्खन न थी रोटी किन्तु गेहूँ की कुछ जाली-जालीदार-सी चीज थी। स्टेशनो पर अग्निहोत्रीजी ने मुसलमानो को यह पदार्थ बेचते देखा था इसलिए उस वस्तु को पहिचान गये। लड़का उसको चाय में डुबो-डुबोकर खा रहा था। लडके के मुँह मे मैल की तह जमी थी और उसकी आँखो में कीचड था।

लडके से थोडी दूरी पर मैली-कुचैली धोती पहिने एक स्त्री बैठी बैठी बाल काढ रही थी। इसको देखने के बाद अग्निहोत्री को सशय न रहा। आठ वर्ष पहले जिस ब्राह्मण कन्या के साथ लडके का व्याह किया था वही शृंगार कर रही थी। भारी हृदय से उसने उससे पूछा—'गोविन्दराम है ?'

'कौन है ?'—दूसरे गाँव की अल्पवयस्का कन्या वर्षों पहले देखे हुए ससुर को कैसे पहचाने ? 'गोविन्दराम बाहर गया है। क्या काम है ?'—उसने पूछा।

'मैं उसके गाँव का हूँ। मिलना है।'

'वै ो अभी आयेगा।' कह कर निर्लज्ज स्त्री ने बाल काढना प्रारभ किया।

अग्निहोत्रीजी ने घर के चारो ओर दृष्टि डाली। एक छोटी कोठरी, उसमे एक-दो टूटी-फूटी कुरसियाँ, दो तीन पेटियाँ, पुराने वासन, फटी धोतियाँ और कूडे के ढेर के सिवा और कुछ नही दिखाई पड़ा। उसके गाँव की तो कुम्हारिन की झोपड़ी भी ऐसी गन्दी और अव्यवस्थित न थी।

'दातून दोगी ?'—बुड्ढे ने थोडी देर मे विवश होकर कहा।

'खल्लास हो गई चाहो तो नमक है।'

अग्निहोत्री ने नमक लिया और मुँह धोकर कुल्ला करने के लिए पानी माँगा।

'वह रहा नल'—सडास के पास एक चौक मे एक स्त्री जूठे वासन माँज रही थी, वहाँ एक नल था। उसको दिखाकर गोविन्दराम की पत्नी ने कहा। अग्निहोत्री उस ओर गये, उस स्त्री को जूठे हाथ से नल बन्द करते देखा और चुपचाप लौट आये। इस समय वह लडका हाथ मे का बिस्कुट का टुकडा चबाता चबाता अपनी माँ के बाल खीचने लगा था और कह रहा था—'माँ, और चाय दे।'

अग्निहोत्री ने पूछा—'नहाने का भी यही नल है क्या ?'

'यहाँ सदा नल नही आता रहता। उस बडे वासन मे से पानी लेकर नहा लेना।'—नल के पास पडे हुए एक सार्वजनिक वासन को दिखाकर गोविन्दराम की पत्नी ने कहा।

एक क्षण अग्निहोत्री चुप रहा। उसने आँखे मीची। उनकी सध्या का समय बीता जा रहा था परन्तु क्या करे ? बाहर निकलकर उस वासन की ओर देखता रहा।

बासन माँजनेवाली शांति से बासन माँज रही थी और नल बन्द हो जाने के कारण जूठे हाथ से उस बड़े बर्तन में से पानी ले रही थी। एक दो गन्दे लड़के भी वह पानी उछाल रहे थे।

अग्निहोत्री की विचार करने की शक्ति रुक गयी। वह वापिस आया और दरवाज़े पर क्षण भर खड़ा रहा—और विचार करने लगा—यह गोविन्दराम अग्निहोत्री का घर? और यहाँ का यह आचार? वह यह कैसे सहन करे और इसमें किस प्रकार रहे? क्या करे? इतने में उसका ध्यान घर की ओर गया। चुल्हे पर की दाल उफनाई, वह स्त्री उठी और वैसी की वैसी—न हाथ धोया, न सोले की धोती पहनी और चूल्हे के पास जाकर दाल उतार आयी। यह देखकर अग्निहोत्री जी की दुविधा दूर हो गयी। उन्होंने पगड़ी सिर पर रखकर पोटली हाथ में ली। यह अधोगति देखकर उनका सिर घूमने लगा।

'मैं बाहर हो आऊ, फिर आऊगा।' कहकर वह चल पड़े। अग्निहोत्री वहाँ से बाहर निकला। उसकी तीक्ष्ण आँखों का तेज खण्डित हो गया। उसकी देह का बल जाता रहा। उसे स्मरण न रहा कि मैं स्वयं किस संसार में हूँ। उसे समझ न पड़ा कि ऐसे संसार में मैं किसलिए आया। किसी से मार्ग पूछकर उसने समुद्र की ओर चलना प्रारम्भ किया।

सागर देखकर उसके मन को सान्त्वना हुई और स्नान-संध्या करके वह स्वस्थ हुआ। जो स्त्री और लड़का वह देखकर आया था वे क्या सचमुच ही गोविन्दराम के थे? इसे मान लेने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। घबड़ाकर उसने चारों ओर देखा। सामने थोड़ी दूर पर शंकर के मन्दिर के गगनचुम्बी शिखर पर से भगवा ध्वजा उसको आमन्त्रित कर रहा था। उसके हृदय को कुछ आश्वासन मिला।

अन्त में भोलानाथ ब्राह्मण की सहायता के लिए दौड़े तो सही। धीरे धीरे वह बाबुलनाथ के मन्दिर में गया और उसने शंकर की पूजा की।

फिर स्वच्छ चित्त से विचार करने लगा, परन्तु कुछ न सूझ पडा। अपना प्रिय घर जलकर राख हुआ देख मनुष्य को जैसा लगता है वैसा ही उसे भी लगा। उसे लगा कि मै स्वय जलकर राख हो गया हूं।

सध्या को बाबुलनाथ के पास चौपाटी पर उसने आदमियो की भीड देखी, भाग्यशालियो की शान और तडक-भडक देखी, गाडी और मोटरो की धूम देखी, परन्तु उसके हृदय मे कुछ परिवर्तन न हुआ। ससार और श्मशान के बीच जितना अन्तर होता है उतना ही अन्तर अपने और इन सब के बीच उसे लगा।

संध्या को एक मोह ने उसके प्राणो को खीचा। जाने अनजाने वह गिरगाँव की उस चाल की ओर गया—खिच गया। स्पष्ट विचार किये बिना ही वह फिर पुत्र के घर की ओर गया।

वह चाल के सामने पहुँचा परन्तु ऊपर न चढ सका। चाल का दृश्य, हल्ला गुल्ला और माथा फाड डालनेवाली गन्दगी देखकर आगे पैर रखने का उसे साहस न हुआ। वह वहाँ कब तक खडा रहा इसकी उसे सुध न थी। अन्त मे उसके कान मे कुछ परिचित स्वर सुनाई पडा और वह विचार निद्रा से जागा। स्वर उसकी पुत्र-वधू का था, उसके साथ कोई पुरुष था। अग्निहोत्री ने ध्यानपूर्वक देखा और पीछे हटकर अन्धकार का आश्रय लिया। वह पुरुष मैला गन्दा पतलून पहने हुए था, एक फटा पुराना हैट सिर पर लगाए हुए था, उसके मुँह मे सिगरेट सुशोभित था। अग्निहोत्री की आँखो के आगे चक्कर आ गया। इस गन्दे सस्कार-भ्रष्ट, नरवानर को उसने पहचाना। वह था उसकी आशाओ का आधार-सा इकलौता बेटा—गोविन्दराम। बिना देर तक विचार किये वह उनके पीछे पीछे चल दिया।

'चल आज तुझे ईरानी की दूकान मे ले चलूँ।'—गोविन्दराम ने अपनी पत्नी से कहा।

'नहीं',—स्त्री ने कहा—'मुझे तो वहाँ कुछ अच्छा नहीं लगता।'

'तू इतने वर्ष बंबई में रही, परन्तु सुधरी नहीं; चल-चल।'—कहकर गोविन्दराम आग्रह पूर्वक उसको ईरानी की दूकान में घसीट ले गया।

अग्निहोत्री की आँखों में कुछ विचित्र प्रकार का तेज समा गया। अन्धकार में भी वे चमकने लगीं। उस दूकान में से दो मियाँ भाई निकले और लड़खड़ाते हुए चले गये। अग्निहोत्री ने निःश्वास छोड़ा और शिवालय की ओर वापस मुड़ गया। उसको लगा कि सृष्टि जलकर राख हो गयी है। केवल चिता से उठकर आये हुए शव वहाँ घूम रहे हैं। मन्दिर की भव्यता उसे श्मशान से भी बीभत्स लगी। उसने मन्दिर के गर्भ द्वार पर जाकर शंकर को प्रणाम किया, परन्तु शंकर कुछ कृत्रिम-से जँचे। आस-पास का विद्युत् का प्रकाश अन्धकार से भी अधिक कष्टकर लगा। पुजारी ब्राह्मण को देख कर रोंगटे खड़े हो गये। एक कोने में हाथ जोड़ कर वह खड़ा रहा। पास ही दो ब्राह्मण बैठे बातें कर रहे थे।

'भाई, कल सेठ के यहाँ संवत्सरी है, जानते हो?'

'है।'—दूसरे ने कहा—'अरे राम।'

'क्यों?'

'मेरे यहाँ सूतक है।'

'उसे कौन जानेगा रे? पच्चीस रुपये क्यों खोते हो?'

'तब ठीक है, परन्तु कोई जानने न पाये।'

'एक शर्त स्वीकार हो तो?'

'क्या?'

'पन्द्रह तेरे और दस मेरे।'

'भाई, यह अन्याय कर रहे हो।'

'तब तुम्हारी इच्छा।'

'अच्छा, ठीक रहा।'

'अच्छा, तब कल सबेरे वालकेश्वर .

अग्निहोत्री की भृकुटियाँ सकुचित हुईं। उसकी आँखे पागल मनुष्य की भाँति चमकने लगी। वह जैसा का तैसा स्तभित रह गया। अन्त मे भैया ने उसे वहाँ से भगाया और बाहर धर्मशाला मे आकर वह लेट रहा, पर उसे नीद नही आयी। अनेक स्वर उसे सुनाई पडने लगे। सारी पृथ्वी उसका परिहास करने लगी। वह उठ खडा हुआ और इधर उधर घूमने लगा।

उषा की प्रथम किरण अग्निहोत्री के अनिमेष नेत्रो ने मन्दिर के शिखर पर पडते देखी। उसने आकाश मे चारो ओर दृष्टि डाली। दूर सागर की मर्यादा की ओर दृष्टि डाली। पीछे मुडकर निद्रित नगर की ओर देखा और धीरे-धीरे मन्दिर की सीढियो से उतर कर सागर की ओर चला।

उसने स्नान किया, सन्ध्या की, साठ वर्षो से सरलता से जीभपर चढे हुए मन्त्रो का उच्चारण किया। दूसरे शिवालय की फहराती ध्वजा देखी। जिस श्रद्धा के आधार पर, जिस आशा के तन्तु पर वह जीता था, उसके मूल का पता तक न था। जो भावना श्वास और प्राण का पोषण करती थी, वह नष्ट हो गयी थी। उसने उदित होते हुए सूर्य को अर्घ्य दिया और मन ही मन ताना दिया—'भगवन्! तुम्हारा तेज भी समाप्त हो गया है?' उसने शकर की ध्वजा की ओर तिरस्कार की दृष्टि डाली। वह दृष्टि कह रही थी—'पिनाकपाणि! तुम्हारा त्रिशूल भी घिस गया है न?'

उसकी आँखो मे सहस्रो पीढियो का ब्रह्म तेज प्रकट हुआ। उसके तेजस्वी माथे पर साक्षात् सरस्वती विराजमान थी। उसकी सस्कारी और धर्मपरायण आत्मा शात और स्वस्थ बनी। परन्तु उसके कानो मे समुद्र की तरगे कुछ कुछ हास्य कर रही थी। रणयज्ञ मे होम दिये हुए योद्धाओ मे से बचे हुए शूर योद्धा की भाँति जोश से वह अपने स्वातन्त्र्य

की रक्षा करने लगा। वह समुद्र में आगे बढता गया, सूर्यबिम्ब पर निश्चल नेत्रो का तेज बरसाया और मुँह से बोला ---'तत्सवितुर्वरेण्य !' लहरें उसके मुँह तक आ गयी, ऊपर चढी, आँख तक पहुँची। वह स्थिर नेत्रो से आगे बढा। आँखे बन्द हो गयी। शिखा अदृश्य हो गयी। उसके सिर पर पानी बहने लगा।

उस सस्कारी आत्मा ने अनेक रंग देखे। उसकी आँखो के सामने सूर्य-बिम्ब नाचता रहा। उसने ओंकार के दर्शन किये। कानो मे स्वर आया, कोई हँसी उडाते हुए कह रहा था---

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥'

उसने 'तत्सवितुर्वरेण्य' बोलना प्रारभ किया, परन्तु सूर्य बिम्ब डूब गया, नाद बन्द हो गया और दसो दिशाओ में अन्धकार छा गया। अग्नि-होत्री की आहुतियाँ पूर्ण हो गई।

मैं रूस जा रहा हूँ

श्री सीताराम चतुर्वेदी

छोटी श्रेणी के लोगो का जो पागलपन मध्यम श्रेणी के लोगो मे सनक कहलाता है वही महापुरुषो मे पहुँचकर सिद्धांत वन जाता है। मेरा मित्र पिल्ले भी उत्पन्न हुआ था मध्यम श्रेणी मे, उठता-बैठता था निम्न श्रेणी वालो के साथ और बाते करता था महापुरुषो जैसी। 'पिल्ले' शब्द पढते ही आपको अपने कुत्ते के पिल्ले स्मरण हो आये होगे और स्वाभाविक रूप से आप के हृदय मे जमकर बैठा हुआ हास आपके ओष्ठ-कपाट खोलकर, गालो को फैलाकर, नेत्रो को अर्ध-निमीलित करके दाँत की चाँदनी बन कर खिल उठा होगा। पर मैं पूछता हूँ, आप लोगो मे ही कौन बडे अच्छे नाम है? —बुद्धू, नत्थू, झगडू, घसीटा, खचेडू, पनारू, कतवारू, और न जाने कितने अटर सटर नाम है, कोई ठिकाना है। और फिर मेरे मित्र का नाम वी० रामचन्द्रन् पिल्ले है। यह वी० उसके पिता का नाम है, पर उसका अर्थ क्या है यह मैं भी नही जानता, आप भी मत जानिये। वह मद्रास प्रान्त के तिन्नेवल्ली नगर का रहने वाला है, उसकी मातृ भाषा तेलुगु है, उसका सिद्धात वसुधैव कुटुम्बकम् है, उसके परिवार मे एक पहाडी सुग्गा बच रहा था उसे बिल्ली झपट ले गयी, उसने एक कुत्ता पाला था उसे किसी ने गोली मार दी, एक बन्दर उसने कुछ दिनो से बाध रक्खा था वह किसी ने मार भगाया और फिर गाधी जी की देखा देखी महापुरुष बनने की धुन मे उसने जो बकरी पाल रक्खी थी उसे भी किसी ने देवी को चढा दिया। परिवार जुटाने के प्रयत्न मे जब ईश्वर की ओर से सहयोग के बदले असहयोग मिलने लगा तब वह नास्तिक हो गया, फक्कड हो गया। जहाँ मिल जाता खा लेता, जहाँ पड जाता सो रहता, जो भी धन्धा मिल जाता कर

लेता। कुछ लोग उसे पागल कहते, कुछ सनकी समझते और कुछ लोग उसे महापुरुष मानकर उसमें श्रद्धा रखते।

मद्रासी होने के नाते वह रङ्ग में मुझसे सवाया था और मेरे ही समान उसकी भी यह धारणा थी कि राम और कृष्ण हमारे ही रङ्ग के रहे होंगे। किन्तु श्रीकृष्ण जी से उसे एक ही बात की चिढ थी कि रङ्ग की समानता होते हुए भी उन्हें तो सोलह सहस्त्र रानियाँ मिली और पिल्ले को एक मिट्टी की रानी भी न मिल पायी।

रङ्ग की महाघनश्यामता होने पर भी वह अपने को कामदेव से कम नहीं समझता था। यद्यपि सवर्ण होने के नाते मेरा यह धर्म तो नही है कि मैं पिल्ले का नख-शिख वर्णन करूँ किन्तु कथाकार के धर्म की रक्षा के लिए आवश्यक समझकर इतना ही कह देता हूं कि जब वह अपने काले भुच्च शरीर पर अधबहियाँ कमीज पहिन कर, लुंगी बाँधकर, पेशावरी चप्पल पैरो में डालकर और माथे पर लाल टीका देकर निकलता था तब ऐसा लगता था मानो मध्यप्रदेश के जगल मे पकडे हुए किसी काले भालू को उजले कपडे पहना कर उसके माथे पर लाल पकी हुई झडबेरी टाँक दी हो। किन्तु पिल्ले उस समय अपने मन मे यही समझता था मानो नगर की सभी कुमारियाँ हाथो मे वर माला लेकर अपने अपने द्वार पर उत्सुकता के साथ मेरा वरण करने के लिए खडी हो। वह फर्राटे की हिन्दी बोलता था और यदि उसका रङ्ग और नाम ही उसका भेद न खोल देते तो कोई सपने में भी नही समझ सकता था कि पिल्ले जी किष्किन्धा से चले आ रहे हैं।

पिल्ले ने कांग्रेस, हिन्दू सभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, समाजवादी दल, कम्यूनिस्ट पार्टी आदि सभी संस्थाओं में बारी-बारी नाम लिखाकर कभी दाढी बढाई, कभी बाल बढाए, कभी मूछे रक्खीं, कभी नासिका और ओष्ठ के मध्यप्रान्त का जगल पूरा छिलवा डाला पर उसकी तपस्या

सिद्ध न हुई। विष्णु भगवान् शेष शय्या पर पड़े योग निद्रा में खर्राटे भरते रहे, शिवजी विजया चढाकर कैलाश पर झूमते रहे और ब्रह्मा जी नाभिपद्म पर जमे हुए समाधि लगाये बैठे रहे, किसी का आसन न डोला, किसी की समाधि भग न हुई। अन्त मे उसने बाल चढाये, दाढी-मूछ भगवान को अर्पित की, लुगी का स्थान पाजामे को दिया, माथे का टीका धो बहाया और पेशावरी चप्पल के बदले सादी चप्पलें पैरो मे डाल ली, अधवहियाँ कमीज के बदले कुर्ता डाटा और उस पर जमाई जवाहर सदरी। मैं निरपेक्ष होकर पिल्ले के इन परिवर्तनो को देखता रहा, टोकता भी रहा, चुटकियाँ भी लेता रहा पर पिल्ले ने मुझे अपना ध्येय स्पष्ट रूप से कह दिया था—मैं पत्नी चाहता हूँ।

पिल्ले को विश्वास था कि यदि बिल्ली के भाग से छीका टूट सकता है तो पिल्ले के भाग से पत्नी क्यो नही मिल सकती। उसे जाति, धर्म, समाज, वर्ण, देश किसी प्रकार का बन्धन तो मान्य था नही। वह केवल पत्नी चाहता था, चाहे सुन्दर हो या असुन्दर, पढी हो या अनपढ, हिन्दू हो या मुसलमान, देशी हो या विदेशी। फिर भी इस स्थितप्रज्ञ, विश्वबन्धु अनीश्वरवादी पिल्ले को केवल एक पत्नी नही मिल रही थी। यहाँ तक कि अनाथालय वाले भी उस अज्ञात-कुलशील, अर्थ हीन पिल्ले मे किसी अनाथ कन्या का विवाह करने को सहमत न थे।

किन्तु पिल्ले के विराग मय जीवन का यह कोमल पक्ष केवल मैं जानता था और वह भी इसलिये कि पिल्ले मेरा अभिन्न मित्र था, नहाने भी जाता था तो मुझ से पूछकर और यदि छीकता भी तो मुझे बता देता। अपने ऊपर इतना गहरा विश्वास करने वाले मित्र का रहस्य खोलकर मैं विश्वासघात और मित्रद्रोह का पापी नही वन रहा हूँ क्योकि मुझे भी कुम्भी पाक का भय है और इसलिए मैंने इसके लिए पिल्ले की अनुज्ञा प्राप्त कर ली है।

निरीह पिल्ले ! मेरी तुम्हारे साथ बडी सहानुभूति है । जिस देश में दहेज का द्रव्य घर मे न होने के कारण लाखो कन्याए कुमारी रहकर बुढ़ापा तक काट देती है, जहाँ अपने विवाह की चिन्ता मे घुलते हुए माता-पिता की मनोव्यथा को सहन करने वाली सैकड़ो कन्याए यम को वरण करने के लिए विवश होती है उसी देश मे ऐसा एक भी पिता नही जो अपनी कन्या लाकर तुम्हे दे डाले , ऐसी एक भी कन्या नही जो यम के बदले तुम्हारे गले मे वर माला डाल दे ? काला रग ही बाधक हो ऐसी भी बात नही है क्योकि पिल्ले के रग से भी अधिक गहरे रग वाले, पिल्ले से भी अधिक विकृत रूप वाले और पिल्ले से भी कही अधिक उजड्ड, मूर्ख, देहाती आज दस दस बच्चो के बाप बने बैठे है । उन्हे भी तो कही पत्नी मिली होगी न ? पर न जाने पिल्ले ने ही ब्रह्मा की दाढी का ऐसा कौन-सा बाल नोच लिया था कि उसी के माथे से पत्नी मिलने वाली रेखा उस चौमुंहे ने रगड मिटायी ।

थोडे दिनो से वह मुझे मिला नही था । मैने समझ लिया था कि या तो उसकी साँठ-गाँठ बैठ गयी होगी या वह कही बाहर चल दिया होगा । रमते जोगी का ठिकाना ही क्या ? दो चार दिनो तो मैने पूछताछ भी की फिर मै अपने काम मे लिपट गया । मैने पिल्ले को भूलना प्रारम्भ कर दिया ।

सयोग वश मुझे बम्बई चला आना पडा, इस लिये पिल्ले और उसकी स्मृति दोनो मुझसे दूर हो गयी ।

पिछली दीवाली के दिन मै अपने एक मित्र से मिलने सान्ताक्रूज चला गया था । वहीं बात-बात मे उसने पिल्ले की चर्चा छेडी और कहने लगा कि वह आजकल बंबई मे एक हिन्दुस्तानी परिवार के साथ रहता है । बंबई मे गुजराती, मराठी, गोवानी, मद्रासी, सिन्धी, मारवाडी, पारसी, सिख, बोहरा, खोजा, मुसलमान आदि अनेक भेदो मे हिन्दुस्तानी भी एक भेद है जिसका अर्थ है युक्त प्रात का रहनेवाला । मुझे बडी उत्सुकता हुई

और वहाँ से छुट्टी पाकर मैं बिजली गाडी मे बैठकर सीधा महालक्ष्मी जाकर उतरा। लगभग सात सौ पग चलने पर वह नर्मदा-भवन मिला जिसके दूसरे खण्ड पर बीस सख्यक प्रकोष्ठ मे पिल्ले को होना चाहिये था।

मैंने द्वार खटखटाया। द्वार-छिद्र मे से किसी आँख ने झाँका और सिटकिनी के एक खटके के साथ द्वार खुल गया। एक महिला, जिन्होने पिछले जन्म में ऐरावत की सहधर्मिणी होने का सौभाग्य प्राप्त किया होगा—भीतर प्रविष्ट होने का कुल मार्ग अपने शरीर के विस्तार मे रोके खडी थी। उन्होने शका और जिज्ञासा की दृष्टि से मेरी ओर घूरकर देखा और फिर अपने शब्दों मे मेरठी स्वराघात का टकार देते हुए उन्होने पूछा—'किसे पुन्छो हो ?'

स्त्री को सामने देखकर पुरुप जितना कोमलतम बन सकता है, उससे भी अधिक कोमलता और सौम्यता का रूपक बाँधकर मैंने अत्यत शुद्ध उच्चारण के साथ लखनवी उपचार का आश्रय लेकर अपनी पुरुष सुलभ कर्कश वाणी को यथासभव मधुर और मृदुल बनाते हुए सिर को दाईं ओर तनिक सा झुकाकर शील और दैन्य की सभी मुद्राएं मुख पर सचित करके दबी हुई वाणी से कहा—

'जी, मैं पिल्ले से मिलने आया था।'

'भित्तर आ जाओ।' उन्होने कह तो दिया किन्तु अपने स्थान मे वे डिगी नही। वे द्वार भी बन्द करना चाहती थी किन्तु उनके शरीर की गुरुता इस द्विविध सकल्प की पूर्ति मे बाधक बनी खडी थी। मैंने अत्यन्त नम्रता से कहा—

'मैं बन्द किये देता हूँ।'

मैंने द्वार बन्द करके सिटकिनी चढा दी। उस द्वार से भीतर के प्रकोष्ठ तक दो हाथ चौडा गलियारा था। वे घूमी मानो पृथ्वी का गोला दोनो समानान्तर भीतो के बीच अपनी धुरी पर घूम गया हो। आगे-आगे वे थी,

पीछे-पीछे मैं। मुझे अपनी लंबाई चौड़ाई पर जो अभिमान था वह आज इन देवी के आगे गलकर पानी हो गया। मुझे केवल यही आश्चर्य हो रहा था कि यहाँ की सीढ़ियाँ अब तक बची कैसे रह गयी, छत अब तक ऊपर ही क्यों है।

वे पलंग में जा समायी और हाँफने लगी। मैं एक मोढ़े पर जा बैठा और एक समाचार-पत्र उठाकर पढ़ने लगा। श्वास की गति ठीक हो चुकने पर उन्होंने मुझसे पूछा —

'तुम पिल्ले कू कैसे जानो हो ?'

मैंने सब कथा संक्षेप में कह सुनायी। उनके चौड़े, गोल, गदकारे विक्टोरियाई मुख पर प्रसन्नता की एक मन्द धुँधली रेखा देखकर मुझे भी उनसे बात करने की प्रेरणा मिली। उन्होंने मेरे अनिसक्षिप्त प्रश्नों का जो विस्तृत उत्तर दिया उसका साराश यह है कि वे जाति की वैश्य है, मेरठ में उनका पीहर है, रुड़की में व्याही है, उनके पति पिछले हिन्दू-मुसलिम दंगे में काम आये, उनके पिता सन्यासी हो गये, एक सयानी कन्या है जो बी० ए० पास करके कुछ काम करती है, क्या करती है वे ठीक ठीक नहीं बता सकी, पर इतना अवश्य स्पष्ट हो गया कि उस काम को सीखने के लिए ही वह यहाँ आयी है और इसीलिए इन्हें भी विवश होकर यहाँ आना पड़ा है, यहाँ पर पिल्ले से भी जान-पहचान हो गई है और वह पुत्र के समान इसी घर में रहता है, उसके कारण बड़ी सुविधा हो गई है घर-गिरस्ती में। यद्यपि उनकी कन्या के विषय में मुझे कुछ अधिक नहीं ज्ञात हो सका किन्तु उनके विषय में मैं इतना अधिक जान गया कि केवल उन्हीं पर प्रबन्ध लिखकर मैं साहित्य महोपाध्याय की उपाधि पा सकता था।

वे स्त्री थीं यह सत्य है, किन्तु सहस्रों पुरुष उनके आगे तुच्छ, नगण्य, शून्य दिखाई पड़ते थे, यह उससे भी अधिक सत्य है। पुरुष बनाते बनाते ब्रह्मा ने उन्हें स्त्री बनाकर जो भूल की थी उसका पश्चाताप और क्षोभ

ब्रह्मा से अधिक उन्हें था। जब जब अपने अभ्यस्त शील के कारण मैं उनके नारी वाची सबोधन प्रयुक्त करता या उनके नारीत्व का किसी भी प्रकार स्मरण दिलाता तब तब वे खीझ खीझ कर बौखला उठती और अन्त मे मैं भी इस निश्चय पर पहुँचा कि उन्हे स्त्री, नारी या अबला कहना केवल उनका ही नही वरन् मानवता के कोमलतर पक्ष—नारीवर्ग का भी अपमान करना था। उन्नीसवी शताब्दि-की होती हुई भी वे इक्कीसवी शताब्दि मे होनेवालो को कान काटती थी। भारत के हिन्दू सस्कार और परिवार मे पाली-पोसी होने पर भी उनके विचार अमरीका की अति प्रवुद्ध और अति स्वतन्त्र नारियो से दस हाथ आगे थे। कुशल यही समझिये कि उन्होने अपने विचारो की महागतिशीलता को मूर्त्त स्वरूप देने के लिए ऊँची एडी के जूते पर फ्रौक नही पहरा, झबरे बाल नही कटाये अन्यथा किसी आधुनिक कवि को उपमान के अभाव मे झख मारकर गोस्वामीजी के शब्दो मे कहना पडता—सब उपमा कवि रहे जुठारो। कम से कम मैं तो अवश्य इतना कह बैठता—'का बरनौं छवि आपकी।'

विपरीत लक्षणा तथा आर्थी व्यजना के द्वारा इसके जितने भी लक्ष्यार्थ और व्यगार्थ निकल सकते थे वे रोचक भले ही न हो किंतु रमणीयार्थ प्रतिपादक अवश्य होगे इसमे कोई सन्देह नही। मैं पुरुष होकर इतना आगे नही बढ पाया जितना वह स्त्री होकर बढ चुकी थीं। जब माँ की यह दशा थी तब पुत्री कहाँ तक बढ चुकी होगी इस कुतूहल ने मुझे उनकी पुत्री के दर्शन करने की उत्कठा और भी अधिक बढा दी।

विलब तो हो रहा था पर भारतीय परिवार का यह नया अनुभव प्राप्त करने का प्रलोभन भी कम बलवान नही था। उनसे छुट्टी लेना भी सभव नही था क्योकि उनकी वाग्धारा ऐसे क्रम से और इस वेग से बह रही थी कि हिमालय भी उसमें पडता तो बह जाता, फिर मैं किस गिनती मे था। भारतीय समाज का सभवत कोई भी अग ऐसा नही था जो उनकी आलो-

चना का आखेट न बना हो, यहाँ तक कि मेरे माथे का चन्दन, सिर पर की टोपी और बारह मासी सदरी भी उनके सूक्ष्मभेदी नैनो और मर्मभेदी बैनो से न बच पायी। पर मै भी स्थितप्रज्ञ बना बैठा था। एक कान से सुनकर तत्काल उसे दूसरे कान से निकालता जा रहा था। मै जानता हूँ कि मेरी उस उदासीनता मे उन्होने मुझे परम मूर्ख, बुद्धू और जड समझा होगा किन्तु इसका मुझे तनिक भी दु ख नही है, क्योकि दूसरे मुझे क्या और क्यो समझते है इसकी मैने कभी चिता नही की और अब भी नही कर रहा था।

किसी भी अतिथि को जलपान कराना, पान इलायची देना भारत का प्रसिद्ध शिष्टाचार है। सिन्धी लोग पापड़-पानी से सत्कार करते है, पजाब मे दही की लस्सी चलती है, युक्तप्रात मे पान या मिठाई नमकीन से स्वागत किया जाता है, बिहार मे चिउडा दही परोसा जाता है, बगाल में रसगुल्ला देने का शिष्टाचार है, गुजरात मे चाय की प्रथा चल निकली है, महाराष्ट्र मे नमकीन सीगदाना और चिउडा दिया जाता है, मेरठ की ओर गाँवो मे लोग सिखरन पिलाते है एक भेली गुड देकर पानी का लोटा बढा देते है, और कुछ नही तो कम मे कम पानी तो सभी पिलाते है। हमारे यहाँ पुरानी सूक्ति भी है—

आसन पानी मीठी, बात।
सज्जन के घर सदा सुहात॥

आसन तो मुझे मिल गया था और जैसी तैसी बाते भी सुनने को मिल ही रही थी और यह भी कैसे कहूँ कि वे मीठी नही थी, पर पानी के अभी दर्शन नही हुए थे और जब देखा कि महादेवीजी बैठी बैठी लेट भी गयी तब तो उसकी रही सही आशा भी जाती रही। पर प्यास सचमुच लगी थी। लोगो के ओठ बोलते बोलते सूखते है यहा सुनते सुनते ओठ ही नही शरीर भी सूखा जा रहा था। मै शील के भार से दबा हुआ पानी मांगने में सकोच

कर रहा था, वे शरीर के भार से हिलने-डुलने मे संकोच कर रही थी। इतने ही में द्वार पर खट खट हुई। उन्होने मेरी ओर देखकर कहा—

'अजी खोल दीयो तो।'

द्वार खोला, पिल्ले था सामने। अचरज से एक बार मेरी ओर देखा और फिर गले से लिपट गया। उसके पीछे जो देवी थी उनकी आकृति से ही मैं समझ गया कि ये महादेवी की सुपुत्री होगी। मेरे इस मानसिक निश्चय का तत्काल समर्थन करते हुए पिल्ले ने कहा—'ये है बहन शारदा, कुछ समाज-सेवा का काम सीख रही है।'

और तत्काल 'मेरे अभिन्न मित्र' विशेषण जोडकर उसने बहन शारदा से मेरा परिचय भी कराया। उन्होने प्रथम परिचय के अवसर पर अभिनीत की जाने वाली मिथ्या मुस्कान के साथ मुँह खोला—'बडी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर।' वे हाथ बढाना चाहती थी मिलाने के लिए, किन्तु उसके पूर्व ही मैं बद्धाजलि हो चुका था। हम लोग फिर उसी प्रकोष्ठ मे जा पहुँचे जिसमे अभी थोडी देर पहले मैंने डेढ घण्टे तक महादेवी का प्रवचन सुना था। वे अभी तक शैय्या मे फैली हुई थी। हम लोग अलग-अलग पीठासनो पर जा विराजे।

मेरी और पिल्ले की बातचीत होने लगी। शारदा जी भी बीच-बीच मे अपनी सम्मति, समर्थन, सूचना या सूक्ति के द्वारा बातचीत की दुरगी डोरी को तिरगा बना रही थी और महादेवीजी भी जब बीच से टोकती तो पूरा भाषण ही दे डालती। आध घण्टे की बातचीत मे कम से कम अस्सी बार पिल्ले ने बहन शारदा की प्रशसा की होगी, कम से कम साठ बार शारदा जी ने पिल्ले की बडाई की होगी और कम से कम पचास बार महादेवी जी ने पिल्ले और शारदा का सम्मिलित गुणगान किया होगा। इस परस्पर प्रशसा के मर्म का जो स्पष्ट अर्थ हो सकता था उसी अर्थ की साकेतिक व्यंजना करने के लिए मैंने जिज्ञासा भरी कनखियो से पिल्ले की ओर देखा। उसने

आँख झपकाकर नकारात्मक उत्तर दिया । मै समझ गया कि पिल्ले के ग्रह अभी सीधे नही हो रहे है ।

पिल्ले से मिलने पर मुझे इतनी प्रसन्नता हुई थी कि मै जब लौटकर घर आया तब कही मुझे सुध आयी—अरे पानी तो मैने पिया ही नही ।

उस दिन से पिल्ले भी मेरे पास आने जाने लगा और शारदाजी भी । कभी वे दोनो अकेले-अकेले आते, कभी इकट्ठे, और यह क्रम लगभग तीन महीने चलता रहा ।

'प्रसाद' जी ने आजकल के महिला-आन्दोलनो से डरकर और 'ढोल, गँवार, सूद्र, पसु, नारी' लिखनेवाले सर्ववन्द्य कविता-कामिनी-कान्त गोस्वामी तुलसीदासजी के विरुद्ध स्त्रियो का खुला विद्रोह देखकर उन्हे बहलाने के लिए झूठे ही लिख दिया है—

'नारी तुम केवल श्रद्धा ही हो—विश्वास रजत नग पद तल में ।'

और स्त्रिया भी इसे पढ-सुनकर फूली नही समाती । पर वे यह नहीं जानती कि 'प्रसाद' जी ने भी इसमें पुरुषो को बडा सिद्ध करते हुए कहा है कि—'तुम विश्वासरूपी पुरुष हिमालय के पैरो तले 'क्षुद्र तुच्छ' पीयूष स्रोत सी बहा करो ।' इसलिए मैने इन पक्तियो को 'स्वान्त. सुखाय' इस प्रकार बदल दिया है—

'नारी कभी रही हो श्रद्धा
पर अब ईर्ष्या मात्र बची है ।
कभी रही हो मानव-माता
पर अब जग की चण्ट चची है ।।

आपने स्त्रियो के मुख से कभी वह वेद वाक्य अवश्य सुना होगा कि सौत तो मिट्टी की भी बुरी होती है । प्रत्येक विवाहिता स्त्री अपने पति के पास आने जानेवाली बालिका से लेकर वृद्धा अवस्था तक की स्त्री-वर्ग में

गिनी जाने वाली प्रत्येक मानव-मूर्ति को अपनी सौत ही समझती है और यदि उनमे से कोई उनके पति से हँस हँसकर बाते करने लगे तब तो समझो कि सपत्नीत्व पर मुद्रा लग गयी। मेरा घर भी इस सार्वभौम सत्य का अपवाद नही था। मेरी पत्नी को भी शारदा का आना-जाना अच्छा नही लगता था। पर कुशल तो यही थी कि बबई की चाल ढाल देखकर वह धीरे-धीरे समझनी जा रही थी कि यहा अच्छे अच्छो के परदे उतर गये है तो शारदा की क्या गिनती है। फिर भी अपने देश के सस्कार जाते थोडे ही है। एक दिन शारदा आयी और मेरा चित्र उठा ले गयी। मेरी पत्नी को यह बात बहुत बुरी लगी और उन्होने अत्यत खीझ के साथ कहा 'हमे ये बाते अच्छी नही लगती।'

यदि युक्तप्रात मे यह घटना घटी होती और मेरी पत्नी को उस पर इस प्रकार की टिप्पणी करनी होती तो वे अवश्य कहती—

'कह दो इस कलमुही से यहाँ न आया करे। इसे देखकर मेरा आध पाव खून जल जाता है। अबकी बार आयी तो इसका मुँह नोच लूँगी। क्या ही-ही-ही-ही करती है और तुम भी उसके साथ क्या हा-हा ही-ही करते हो। मुझे यह सब कुलच्छन अच्छे नही लगते।'

अपनी शान्त गृहस्थी मे सहसा इस कलह बीज के आ जाने से मै सावधान हो गया और मैंने स्पष्ट रूप से पिल्ले से कह दिया—'भाई, मेरे घर आकर संयम से काम लिया करो।' वह समझ गया और उस दिन से दोनो ने मेरे घर आना ही बन्द कर दिया।

जिसे मिलना होता है उसके लिए क्या घर ही एक स्थान है? और फिर बबई जैसे नगर मे स्थानो की क्या कमी—चौपाटी, लटकन बाग, हवाबन्दर, जोगेश्वरी, कन्हेरी, जुहू और सैकडो होटल जहाँ चाहो जिससे चाहो घण्टी टनटनाओ, समय और स्थान पक्का कर लो, जाकर मिल लो। पर गृहस्थ के लिये मै यह व्यापार अनुचित और निन्द्य समझता था।

इसीलिए मैं जब कभी बाहर जाता, अपनी पत्नी को साथ ले जाता। उन्हें धोखा देकर मैं अपने आत्मा को धोखा नही देना चाहता था। मैंने भी पिल्ले के या यो कहिये शारदा के घर जाना छोड दिया। पर वे दोनो या अकेले किसी चौराहे पर या रेल मोटर के अड्डे पर चिल्ला चिल्ला कर 'जनयुग' बेचते दिखायी पड जाते और वही नमस्कार-प्रणाम भी हो जाता और कुशल-मगल भी।

लगभग चार महीने बीत चले। मैं समझता था कि इस बीच या तो शारदा ने ही कह दिया होगा—

'तुम सम पुरुष न मो सम नारी'। या पिल्ले ने ही कह दिया होगा—

'अर्पित है मेरा यौवन मन।'

क्योंकि मैं शारदाजी के प्रथम दर्शन के ही दिन समझ गया था कि विधाता ने इनके भाल पर भी पिल्ले की भाग्य रेखा का छापा ही ठोक मार है। उनको सुन्दरी कहकर सुन्दरता का, कोमलांगी कहकर कोमलता का, शीलवती कहकर शील का, सुहासिनी कहकर हास का हसगामिनी कहकर हस की गति का, तन्वंगी कहकर तनुता का, मजु भाषिणी कहकर मजु भाषिता का, विलासिनी कहकर शृगार चेष्टाओ का मैं एक साथ गला रेतना नही चाहता था, एक तो स्त्री (न चाहते हुए भी उन्हे स्त्री कहने को विवश हो रहा हूँ) दूसरे वर्गवादिनी, एक तो तितलौकी, फिर नीम चढी। उसके पति होने का सौभाग्य वही प्राप्त कर सकता था जिसने पिछले दस जन्मो मे शीतलावाहन, पन्द्रह जन्मो मे यम वाहन, इक्कीस जन्मो मे भैरव वाहन और पच्चीस जन्मो मे लक्ष्मी वाहन बनने की अप्रतिम तपस्या की होगी। मुझे विश्वास होने लगा कि पिल्ले ने इतनी घोर तपस्या नही की होगी अन्यथा पार्वती जी को नगे महादेवजी के साथ विवाह करने की प्रेरणा करनेवाले नारद जी अपनी महती वीणा बजाते हुए एक दिन शारदा बहन के आगे भी आ खडे होते और कहते—"पिल्ले

को वरण कर लो। यही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो तुम्हारी फावडे जैसी भौहो के उठने गिरने पर 'सीधा घूम, वायाँ घूम, आगे बढो, पीछे हटो' सब सैनिक व्यायाम कर सकता है, जूता पोछने से लेकर भोजन बनाने तक का सब काम कर सकता है, मटकने से लेकर नाचने गाने तक मनोरजन कर सकता है, लोटा भंटाक मेले मे ले कर सोनपुर तक का मेला दिखा सकता है, काग्रेस से लेकर कम्यूनिज्म तक के सब क्षेत्रो मे आ जा सकता है और गुप्तचर से लेकर अध्यापक तक के सब काम कुशलता से कर सकता है। हे देवि! तुम इसी का वरण करो, तुम्हारा कल्याण होगा।'

किन्तु नारद न आ सके और पिल्ले भी कुछ वेदान्ती हो चला। मै भी समझने लगा कि पिल्ले सचमुच महापुरुप है। या तो मरीचि ऐसे थे जो सासारिक प्रलोभनो के बीच तपस्या करते थे या फिर पिल्ले ही है। क्यो न हो, वह मेरा मित्र जो है।

अचानक मेरी धारणा और भी श्रद्धायुक्त हो चली जब उस दिन रात को रूस के भाग्य विधाता मार्शल स्टालिन के आत्म सचिव का तार लिए हुए पिल्ले रात को दस बजे मेरे पास पहुँचा और कहने लगा—

'मैं रूस जा रहा हूँ। यह देखो।'

मैंने तार हाथ मे लिया। उस सक्षिप्त शब्दावली को पढ कर मैंने पिल्ले की ओर देखा तो ऐसा जान पडा मानो वह बढता चला जा रहा है, सुभाष, स्तालिन, गांधी सब क्रमश उसके आगे छोटे होते जा रहे है, बढते-बढते त्रिविक्रम विष्णु के समान वह सर्वत्र व्याप्त हो गया है। मै खडा हो गया, मैंने उससे हाथ मिलाया, उसे बधाई दी और मुझे अपने पर गर्व होने लगा —'मै इतने बडे महापुरुष का मित्र हूँ जिसे स्वय स्तालिन ने निमत्रण दिया है।'

'रविवार को दिल्ली जा रहा हूँ। वही से विशेप विमान लेकर मोस्को उड जाऊँगा।'

मेरी श्रद्धा और भी गहरी हो गयी। मैंने श्रद्धा-विह्वल होकर कहा—'भूल न जाना हमें।'

अपनी पत्नी को भी मैंने समाचार सुनाया। जिसे फूटे मुँह भी पिल्ले नही भाता था वही पिल्ले की इस महत्ता से प्रभावित होकर उसके लिए चार लड्डू ले आयी—'मुँह मीठा कर लो।'

जिस दिन वह दिल्ली के लिए चला उस दिन मैं भी फूल माला लेकर उसे विदा देने बोरी बन्दर तक गया था और मेरी पत्नी भी हठ कर के मेरे साथ गयी थी।

वर्गवादी दल के अनेक युवक युवतियो का समूह वहाँ पहुँचा हुआ था। द्वितीय श्रेणी के डब्बे मे तीन स्थान घिरे हुए थे, एक पर महादेवी जी दूसरे पर शारदा जी, तीसरे पर स्वयं पिल्ले। शारदा जी, और उनकी माता जी दोनो उसे दिल्ली तक पहुँचाने जा रही थीं, उनका घर भी—मेरठ भी—उधर ही था। बड़े धूमधाम से बिदाई दी गयी, सबने फूल मालाएँ पहनायीं। मेरी पत्नी ने अपने हाथ से फूल माला उसे पहनाई और 'कहा-सुना माफ करना' का परिचित सूत्र पढ कर पिल्ले और शारदा से घुलघुल कर बातें की और अन्त मे जब पिल्ले ने कस कर मुझे छाती से लगा लिया तब जी मे फूला न समाया, मानो स्टालिन ने ही मुझे गले लगा लिया हो। सब की दृष्टियो मे मैं ऊँचा उठ गया। पिल्ले ने कहा—'सब से पहले मैं तुम्हें लिखूंगा।' मैं अपने सौभाग्य पर चौगुना फूल उठा और देखा कि सब की ईर्ष्यालु दृष्टियाँ मेरी महत्ता से आक्रान्त हैं।

गाडी ने सीटी दी, गाड़ी चल पडी, और हम लोग अपनी महत्ता पर गर्व करते हुए लौट आये और सब से अधिक रस तो मुझे तब आया जब मेरी पत्नी ने कहा—'बडे अच्छे थे बेचारे।'

इसी को वाल्मीकिजी ने काल की प्रतिकूलता और अनुकूलता कहा है।

उस दिन से मै नित्य समाचारपत्र उलटता रहता और नित्य सोचता रहता कि आज पिल्ले उडा होगा, आज मोस्को पहुँचा होगा, आज उसने पत्र लिखा होगा, आज पत्र बम्बई आया होगा, आज मुझे मिलेगा। और इस कल्पना मे तन्मय हो कर मैं भी शेखचिल्ली के समान मन मोदक खाने लगा कि पत्र मिलने पर मैं भी अपने मित्रो को दिखा दूँगा कि मै कोई साधारण व्यक्ति नही, मै स्टालिन द्वारा निमत्रित माननीय पिल्ले का वह अन्तरग और अभिन्न मित्र हूँ जिसे उसने रूस मे जा कर सब से पहला पत्र लिखा है।

वह दिन भी आया जब पिल्ले के हस्ताक्षर से नाम-ठिकाना लिखा हुआ पत्र मेरी उँगलियो मे पहुँचा तब मै हर्षोद्रेक से ऐसा विह्वल हो गया कि न तो मैंने उस पर की मुद्रा देखी, न टिकट देखा, न हवाई डाक की चिप्पी, बस पिल्ले के अक्षरो से ही मैंने परिणाम निकाल लिया कि हो न हो यह पत्र रूस से ही आया होगा।

पत्र खोला, पढा और भौचक्का रह गया। वह छपा हुआ पत्र था—

श्री मगलमूर्तये नम

शुभ मगल दातार, ऋद्धि सिद्धि पति जग विदित।
होहु कृपालु अपार, राम-शारदा पर सुचित॥

महोदय!

आनन्दकन्द सच्चिदानन्द की कृपा से मेरी आयुष्मती पुत्री सौ० शारदा देवी का शुभ विवाह आगामी वसत पचमी सं० २००४, (तदनुसार ता० १५ फरवरी सन् १९४८), रविवार को गोधूलि बेला मे प्रसिद्ध लोक सेवक श्री रामचन्द्र के साथ होगा। प्रार्थना है कि वर वधू को आशीर्वाद देकर मुझे कृतार्थ करे।

कम्बो गेट
मेरठ

विनीता—
रामटोकरी देवी गुप्ता

इस पत्र को पढकर एक बात तो यह नई ज्ञात हुई कि महादेवीजी के जितने नाम मैंने कल्पित किये थे—विकटकपोला, करालघोषा, प्रचण्ड-वदना, कटाह-शरीरा, महिष-मान-मर्दिनी, मानव हस्तिनी आदि, वे सभी निरर्थक हो गये और उनका नामकरण करने वाले पुरोहित पर बडा रोष आया कि यदि उस मूढ को केवल पात्रवाची ही नाम रखना था तो राम-कडाई, रामहडिका, राममटकी, रामकुठला क्यो नही रक्खा, यह नाम कटोरी क्या दरिद्र नाम उसे सूझा ।

पत्र पढकर पीछे उलटा तो उस पर पिल्ले ने लिखा था—

'मैंने और शारदाजी ने कम्यूनिस्ट पार्टी से त्यागपत्र दे दिया है। विवाह मे अवश्य आना ।'

और उसी के नीचे महिलाई अक्षरो मे शारदाजी ने लिखा था—

'भाभीजी को भी अवश्य लाइयेगा ।'

पत्र पढकर मै कितना झुँझलाया हूँगा यह तो आप इसी बात से समझ सकते होंगे कि उस पत्र को मुरेड तुरेडकर मैंने तत्काल रद्दी की टोकरी में फेक दिया। मैंने अपने महत्व का जो काल्पनिक प्रासाद उठाया था वह इस पत्र ने क्षण भर में ध्वस्त कर दिया। जो पिल्ले अपने अभिन्न मित्र से इतना कपट करके इतनी सब बाते छिपा सकता है, शारदा जैसी अल्पा कन्या से विवाह करने के लिए इतना रूपक बाँध सकता है वह न तो पागल हो सकता है, न सनकी। और महापुरुष ? छि. वह महापुरुष की पग धूलि भी नही हो सकता और मै पिल्ले के उस प्रवचनापूर्ण रूप पर गभीरता से विचार करने लगा जब उसने मुझपर अपनी महत्ता का आतंक जमाते हुए असत्य कहा था—'मै रूस जा रहा हूँ।'

भाषण

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड "वेढब" बनारसी

पल्टूराम के पिता दारू बेचते थे। किन्तु उन्होंने उसका सेवन कभी नही किया, जैसे लक्ष्मी के अनेक कृपापात्र पैसा रहते भी उनका उपयोग कम करते है, उपभोग तो करते ही नही। पलटूराम ने भी यही व्यवसाय आरम्भ किया। भक्त, आज्ञाकारी पुत्र तथा बैलगाडी बनी हुई लीक पर ही चलती है। पिता की बनायी पगडण्डी पर चलकर भी पलटूराम ने वह किया, जो उनके पिता न कर सके थे। जैसे सुरमा आँख मे रहकर भी आँख नही बन जाता, आँख के मूल्य को भले ही बढा दे। उनके हृदय मे एकाएक ज्ञान का स्रोत फूट पडा। उन्होने सोचा कि वह पदार्थ जिसका नामकरण देवताओ के पावन नामपर हुआ हो, नितान्त शुद्ध भले ही न बन सके, शुद्धता का पुट उसमे अवश्य मिलना चाहिये। जैसे पाण्डित्य के लिए विद्या न सही टीका तो होना ही चाहिए। और वह पतित पावनी जगन्माता जाह्नवी के जल से, जिसकी एक बूंद मरते हुए प्राणी को स्वर्ग की सीढी पर खीच लेता है, मदिरा को शुद्ध करने लगे। वारुणी को वरुण का सयोग मिला। वारुणी लक्ष्मी की सहोदरा, वरुण की सहायता। लक्ष्मी बरसने लगी, जैसे पतझड मे नीम के पेड से फूल बरसता है।

महात्मा गाधी के पहले ही पलटूराम के पिता ने वर्तमान शिक्षा को विषाक्त समझ लिया था। उन्होने गणित की शिक्षा नही पायी थी, किन्तु दस तक गिन लेते थे। पण्डितो के अनुसार दस अको मे ही गणित समाप्त है। भाषा की उनकी शिक्षा अक्षरो के परिचय से आगे न बढ सकी। उन्होने समझ लिया था कि अक्षर ही ब्रह्म है। उसके आगे कुछ नही है। कबीर ने ढाई अक्षर की सीमा बाँधी थी, उन्होने पैतालीस अक्षरो का बाँध

तोड दिया था। पलटूराम ने विज्ञान नही पढा ओर न किसी प्रयोगशाला में प्रयोग किया, किन्तु ठर्रा और जल का मिश्रण इस चतुराई से करते थे कि मदाम क्यूरी की स्वर्गता आत्मा भी हर्षातिरेक से विह्वल हो उठती और उनकी मधुशाला के सदस्यो को तो इसका कभी सन्देह भी नही होता। पलटूराम साहित्य के उस सिद्धात के अच्छे ज्ञाता थे जिसके अनुसार कला को छिपा लेना ही सच्ची कला है।

वह हिसाब जोडना न जानते हों, किन्तु धन जोडना जानते थे, वह साहित्य न जानते थे, किन्तु साहित्यकारो को जानते थे। उनमे प्रतिभा न थी, किन्तु प्रतिभा उनके पास एकत्र हो जाती थी। द्रव्य-वस्तु के व्यापार से द्रव्य बढता है, ऐसा जान पडता है। उनके पास भी रुपये उसी गति से बढने लगे जैसे ज्वर मे प्यास बढती है। इसी बीच यूरोप मे लडाई छिड गई। व्यापार के अनेक साधन दिखायी पडे, मानों अलीबाबा की खोह का द्वार खुला। पलटूराम ने एक लगाया और चार पाया। कुम्हार के आँवे की अग्निमें मिट्टी के बर्तन पक्के हो जाते है, समर की अग्नि मे लोगो के घर कच्चे से पक्के हो गये। पलटूराम की कोठी बन गयी। उनकी संपत्ति अब उसी परिमाण में गिनी जाने लगी जिस परिमाण मे रावण के पुत्र और नाती गिने जाते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बताया है कि किस अवस्था में किसे छोड देना चाहिये। पलटूराम ने अपने नये वातावरण मे मधुशाला किसी और रस-प्रेमी व्यक्ति के हाथ में सौंपी और लोहे के व्यापारी बन गये। ठोस होने पर व्यापार भी तरल से ठोस वस्तु का करना उन्हे ठीक जँचा। सरकारी कर्मचारियो का कृपा-कटाक्ष हुआ और पलटूराम को लाइसेन्स मिल गया। कहा जाता है कि युद्धकाल में गदहे को भी किसी व्यापार का लाइसेन्स मिल जाता तो वह लखपति बन जाता। पलटूराम तो उद्योगी पिता के सुपुत्र थे, बन गये। रामचन्द्र बन गये तो रावण को मारा। पलटूराम भी बन गये, लाखों पर हाथ मारा।

अब वह श्री पलटूराम हो गये। श्री तिजोरी मे थी तो नाम के पहले भी आवश्यक थी। लोग भूल गये कि यह कभी महुए की बेटी का शृगार करते थे। वे लोग जिन्हे समाज का कोश बडा कहता है, इनके यहाँ आने लगे। लाख के साथ अभिलाष भी बढी। आकाक्षा की पतग भी कुछ उडी। मनुष्य को भस्म करने वाली प्रचड अग्नि नाम की इच्छा इनके हृदय मे भी धधकी। पैसे का मोह तो था किन्तु दो कार्य के लिए पलटूराम पैसा व्यय करने मे सकोच नही करते थे। यदि सौ का लाभ हो तो वह दस व्यय करने मे नही हिचकते थे; दूसरा यदि उनका नाम पत्रो मे छपे तब भी उनकी थैली का मुँह खुल जाता था।

सार्वजनिक सस्थाओ के सचालक पैसे के प्रेमी होते है, चाहे कही से मिले। कहते है, फरहाद ने एक बिल्ली को चूम लिया था, क्योकि वह उस गिलास को चाट कर आयी थी जिस में शीरी ने दूध पिया था। जिससे हम प्रेम करते है, उसके लिए आँखे बन्द कर लेते है। शीतला माई का वाहन सभापति बन सकता है, यदि उसके पास पासबुक हो। पलटूराम को नाम की अभिलाषा थी, अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी मण्डल को धन की। मिल गये दोनो, जैसे पान मे खैर और चूना मिल जाते है। मण्डल का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था। मन्त्री ने श्री पलटूराम को सभापतित्व के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति समझा।

पलटूराम चौकी पर बैठे थे, उस पर मोटा गद्दा बिछा था। सामने एक लकडी का बक्स था। थोडा स्थान छोडकर सामनें दूसरी चौकी थी। उस पर मुनीमजी बैठकर हिसाब बना रहे थे। अजनबी पहले यही समझता था कि मुनीम जी ही मालिक है, किन्तु मालिक तो बक्सवाला होता है और बक्स इनके सामने था। मन्त्री जी के मस्तिष्क पर हरगौरी का टीका था, धवल खादी का कुरता, टोपी और दुपट्टा था। उनके आते ही ऐसा जान पडा मानो बगुला सरोवर से निकल भागा है। उन्होने पलटूराम को

इस प्रकार प्रणाम किया मानो साक्षात् विष्णु भगवान को नमस्कार कर रहे है ।

पल्टूराम ने देखा । पूछा—'कहिये ।'

मन्त्रीजी बोले—'आप का ही दर्शन करने के लिए आया हूँ ।' पल्टूराम चुप रहे । उन्होने सोचा होगा मेरे दर्शन के लिए कोई आया है तो मै देवता हूंगा और देवता मौन रहते है । थोड़ी देर दोनो व्यक्ति चुप रहे । फिर मन्त्री जी बोले—'अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी मडल का वार्षिक अधिवेशन है । सब लोगो की वडी इच्छा है कि आप ही उसके सभापति हो ।'

मूर्खता देवी का अपरिमित प्रसाद पाने पर भी इतना तो वह सीख ही गये थे कि ऐसे अवसर पर क्या कहना चाहिये । बोले—'इसके लिए तो कोई योग्य व्यक्ति चुनिये । मै अपढ वहाँ क्या करूँगा ।' हम लोग उन्ही बातो की प्रशंसा मे प्रसन्न होते है जिन बातो की हममें कमी होती है । जब मूर्ख को कहा जाता है कि आप बृहस्पति के बाबा के समान है तब वह प्रसन्न होता है । मन्त्री जी ने उन्ही सूत्रो का सहारा लिया जो चाणक्य के काल से चले आ रहे है । कहा—'कालेज और विद्यालय मे ही पढकर ही कोई विद्वान् नही होता । आपने संसार के विश्वविद्यालय मे शिक्षा पायी है । और आपका तनिक सा सकेत हो तो किसी विश्वविद्यालय से डी० लिट्० दिला दूँ ।' पल्टूराम ने सोचा—पल्टूराम डी० लिट्० कानो को कितना मधुर लग रहा है । पल्टूराम बोले—'आप लोग तो बहुत तग करते है । फिर यदि आप लोगो की सेवा न करूँ तब भी नही बनता । कहिये क्या करना होगा ।' जैसे कोई नवविवाहिता वधू अपने पति से बोल रही

मन्त्रीजी ने कहा—करना कुछ नही । चले चलियेगा ।

पल्टूराम—बस ।

मन्त्रीजी बोले—हाँ । और कुछ कह दीजियेगा ।

पलटूराम—मैं उन लोगो मे नही हूँ—जो कहा करते है। मैं तो चुप रहना ठीक समझता हूँ।

मन्त्री—कुछ तो कहना ही पडेगा। लिख दिया जायगा आप पढ दीजियेगा।

पलटूराम—अच्छा ऐसा है तो देखिये फिर छपवा दीजिये जो कुछ लिखिये। और ऐसा लिखा जाय जिससे लोग समझे कि किसी वडे विद्वान् ने लिखा है।

भाषण छपवाने मे यह रहस्य भी था कि लिखावट पढने के प्रयास मे कई दिन तक सभा करनी पडती।

भापण लिखते-लिखते अधिवेशन का दिन भी आ गया। कोई प्रेस दो तीन घण्टो मे छापने के लिए तैयार न हुआ। अन्त मे गली मे छोटा सा प्रेस इसके लिए तत्पर हुआ। जव कम्पोज होने लगा तव कम्पोजीटर ने मैनेजर से कहा—'भ' अक्षर है ही नही। जो पुस्तक का फरमा लगा है उसमे समाप्त हो गया। मैनेजर ने कहा—'कोई अक्षर 'टर्नअप' लगा दो। फिर फरमा उतार कर बदलकर छाप दिया जायगा।'

फोरमैन ने बहुत सा 'म' कम्पोजीटर को दिया और कहा टर्नअप लगा दो, फिर पुस्तक वाले फार्म से वदल देना।

चार वजने लगा पलटूराम का नौकर कई वार आया। प्रेस मे कम्पोजीटर गाँजे के नशे मे टर्नअप लगाना भूल गया। सब सीधे अक्षर लगा दिये। सभा आरभ होते-होते भाषण पहुँचा। पलटूराम कुरसी पर बैठे, इन्हे माला पहनायी गयी—स्वागत हुआ। उन्होंने छपा भाषण पढा थोडा ही पढ पाये—जितना पढा वह इस प्रकार था—

'माइयो और बहनो।

आपको क्या धन्यवाद दूँ। आपने अपने माई का मम्मान किया है। आपके हृदय मे मेवा मर जानी चाहिये। हिन्दू मुमलमानो को

मतभेद मिटाना चाहिए। हमारा प्राचीन देश भरतखण्ड भलमनसी के लिए प्रसिद्ध है। हमारा आदर्श बैल है जो स्वयं भूसा खाता है और हमारे लिए अनाज छोड देता है। आप मुसलमानो की भलाई कीजिये, वह आपके भाई है। हिन्दी और उर्दू हटाकर हिन्दुस्तानीका व्यवहार कीजिये। यही देश का भूषण होगा। आपस के प्रेम के रस में हमें भीजना चाहिये। हम एक दूसरे का भार ग्रहण करें, गले मिलकर एक दूसरे को भेटें। कलह को भाँड में दे डालिये, स्वाधीनता का भोर आ गया है। हमें इसका स्वागत करना चाहिये। मैं भाषण देने के योग्य नही हूँ। विशेषत आप जैसे विद्वानों की भीड मे।'

भाषण का क्या परिणाम हुआ कहने की आवश्यकता नही।

परिवर्तन

श्री करुणापति त्रिपाठी

'डम, डम, डम' करता हुआ डमरू वज उठा। महाकाली के मन्दिर का पट खुल गया और सामने दिखायी पडे ताण्डव करते हुए एक तान्त्रिक भैरवानन्द। उनके एक हाथ मे बजता हुआ डमरू था, दूसरे हाथ मे चमकता हुआ त्रिशूल। गलेमे थी मुण्डमाला और शरीर था व्याघ्र चर्म से अर्द्धाच्छादित। भैरवमुद्रा मे नृत्य करते हुए तान्त्रिक के मस्तक पर चमकता हुआ शोणित त्रिपुण्ड, उसके भीषण आकार को और भी रौद्र बना रहा था।

मन्दिर का पट खुलते ही मण्डप मे बैठे दर्शनार्थी संभ्रमपूर्ण त्वरा के साथ उठ खडे हुए और लगे वजाने भेरी और घण्टाओ को। नरकपाल के धूम्र पात्र से उठते हुए कालागुरू के धूम्र से व्याप्त तथा सहस्रो दीपो से देदीप्यमान अन्तर्मन्दिर मे स्थित महाकाली की प्रतिमा को सभी दर्शक निर्निमेष दृष्टि से देख रहे थे।

ताण्डव करते-करते एकाएक सम पर पहुँच कर तान्त्रिकने नृत्य समाप्त करते हुए, त्रिशूल और डमरू भूमि पर फेक दिये। झकार के रव से मन्दिर गूँज उठा। सहस्त्रवर्तिका और कास्य घटिका उठाकर साधक देवी की आरती करने लगा।

जव आरती भी समाप्त हुई तव अर्द्ध रात्रि के अनन्तर दो दण्ड बीत चुके थे। मन्द्र-स्वर से तान्त्रिक ने सव को चले जाने की आज्ञा दी। दर्शनार्थी चले गये। मन्दिर शून्य हो गया। तान्त्रिक ने अपने शिष्य भृगपाल को बुलाया और आज्ञा दी महाकाली के नैत्यिक अनुष्ठान की सामग्री ले आने की।

मण्डप में देवी के वाहन सिह की एक प्रस्तर-मूर्ति थी। उसी के पास व्याघ्र चर्म बिछाकर साधक बैठ गया। समीपस्थ यज्ञ कुण्ड मे समिधा की

सहायता से अग्नि प्रज्वलित कर दी गयी। रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, रक्त-वस्त्र, तथा पूजन के अन्य सभी रक्त उपकरण लाकर शृगपालने पार्श्व में रख दिये। जलती हुई अग्नि-शिखा के रक्ताभ प्रकाश मे वे सब और भी अरुणाभ हो उठे। बलि के लिए एक महिष लाकर यूप मे बाध दिया गया तथा रक्ताभ मदिरा, उडेल उंडेलकर तान्त्रिक पीने लगा।

पर्याप्त मात्रा मे मदिरा पी चुकने पर जब उसके लोचन ही नहीं, कपोल ओर चिबुक भी महारुण हो उठे, तब उसकी आज्ञा पा कर शृगपाल एक नर-कङ्काल ले आया। व्याघ्र चर्म के ऊपर उस कङ्काल को रखकर तान्त्रिक ने अपना आसन बनाया और उसी पर वह बैठ गया। नरमुण्ड के अस्थि पात्रो मे रखे हुए पूजन के रक्त उपकरण कृष्णारजनी के निशीथ मे घोर भीषणता की सृष्टि करने लगे।

मदोन्मत्त तान्त्रिक शवासन से उठा। एक हाथ में उसने खप्पर लिया और दूसरे हाथ मे तीक्ष्ण खड्ग। यूप बद्ध महिष के पास पहुँच कर अपने सधे हुए आघात द्वारा महिष की गर्दन काट दी। पृथ्वी पर छटककर विशाल शृंगो वाला मस्तक तलफलाने लगा और शरीर छटपटाता हुआ पृथ्वी पर गिर पडा। बहती हुई रक्त की धारा पहले तो खप्पर मे लेकर तान्त्रिक ने महाकाली के चरणो पर चढायी और फिर शीघ्रता के साथ अनेक बार खप्परो को भर भर कर के स्वयं स्नान किया। एक खप्पर में जमते हुए रक्त को भरकर उसने हवनकुण्ड के पास रख दिया। उस अमा की निस्तब्ध रात्रि में शोणित-लिप्त तान्त्रिक की भीषण आकृति देखकर नित्य का अभ्यस्त शृगपाल भी कांप उठा। मन्दिर के आग्नेय कोण में बैठी हुई तान्त्रिक की शिष्या श्यामरगङ्गी भी भय से त्रस्त हो गयी।

तान्त्रिक ने रक्त वर्ण के उपकरणो से महाकाली की पूजा की और लोम अस्थि युक्त महिष-मास लेकर हवन करने लगा। पैशाचिक गन्ध से समस्त मन्दिर भर उठा, किन्तु अश्रान्त यन्त्र की भांति हवन ...

हुए तान्त्रिक का कार्य चलता ही रहा। अग्नि की ज्वाला, वसा की सहायत पाकर दीप्त हो उठी। लपटो की उष्णता से क्रान्त होते हुए, हवन व्यस्त तान्त्रिक ने श्यामलाङ्गी को पुकारा और उसके आने पर मदिरा पिलाने की आज्ञा दी। सुराधान से अस्थि-चषक मे बारम्बार उडेल-उडेलकर मदिरा पिलाकर अपने स्थान की ओर लौटती हुई श्यामलागी को साधक ने पुकारा और अपने अङ्गार से अरुण नेत्रो द्वारा उसकी ओर देखा। श्यामलागी सहम गयी। उस भीषणता को देखकर उसका हृदय धडकने लगा। पल भर भी तान्त्रिक के पास रहना उसे असह्य होने लगा। पर तान्त्रिक ने आज्ञा दी वही बैठ जाने की और अपनी ओर देखते रहने की। उसकी आज्ञा टालना उस मदिर मे किसी के वश की बात न थी। विवश होकर मन्त्रमुग्ध-सी शून्य आखो से वह तान्त्रिक को निहारने लगी।

ब्राह्ममुहूर्त्त मे हवन के समाप्त होते ही उसे ऐसा जान पडा मानो अग्नि की शिखा मे रक्त कमल पर रक्ताम्बर-भूषण धारिणी मुण्डमालिनी महाकाली बैठी हुई हैं और अभय मुद्रा मे कुछ वरदान दे रही है। तान्त्रिक ने स्पष्ट ही सुना, वह कह रही है 'एक वर्ष मे तुम्हारा अनुष्ठान पूर्ण होगा और अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होगी।' इतना कहते कहते अकस्मात वह मूर्ति लपटो मे ही लीन हो गयी और उसी क्षण तान्त्रिक के अट्टहास से मन्दिर गूंज उठा। उसकी चिन्तन शक्ति चचल हो उठी। अत स्थिरता प्राप्त करने के लिए उसने पुन सुरापान किया और खप्पर लेकर डमरू बजाता हुआ वह कापालिक अपने एकान्त कुटीर की ओर चला गया।

[दो]

सम्राट् कुमारगुप्त के शासन कालमें भद्रदत्त नाम का एक विद्वान् सभा पण्डित पाटलिपुत्र में रहता था। शास्त्रार्थ मे दिग्विजय करते हुए काश्मीर के विद्वान् दपति वहाँ आये। राज सभा मे शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया

और भद्रदत्त को शास्त्रार्थ करने की आज्ञा मिली। परन्तु भद्रदत्त ने परीक्षा के लिए अपने पुत्र को, जिसकी वैदुष्य कीर्ति पाटलिपुत्र की विद्वन्मण्डली मे छायी हुई थी, राज सभा मे भेज दिया। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। काश्मीर के पण्डित का सिद्धान्तखडित होता जा रहा था। उनकी पत्नी के तर्क भी सहायक नही हो रहे थे। उनकी दिग्विजय-लालसाका उच्च प्रासाद धलि-सात् होने लगा।

पाटलिपुत्र के विचक्षण की अपराजेय प्रतिभा से काश्मीर की विदुषी व्याकुल हो उठी। घबरा कर उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी का हाथ पकड लिया और एक जोर का झटका देती हुई बोली—

'मेरी ओर देखो! और मेरे प्रश्नो का उत्तर दो!'

न जाने उसकी आँखो मे कौन सी शक्ति थी जिसे देखते ही युवक की सारी शक्ति जैसे किसी ने खीच ली और उसे ऐसा जान पडा, जैसे उसकी आत्मा को शरीर से निकाल कर कही दूसरे स्थानपर किसी ने रख दिया। और तब उस नारी के सम्मुख सज्ञा हीन, मोहग्रस्त, शास्त्रार्थ की प्रतिभा निरुत्तर हो गयी।

जो जो विदुषी कहती जाती थी वह सब भद्रदत्त के पुत्र ने स्वीकार कर लिया और उसके कहने पर यह कि 'तुम पराजित हो न' उसने अपनी स्वीकृति दे दी। अन्त मे उस मोहन शक्ति-निपुणा नारी ने कहा—

'अच्छा युवक! अब उठकर शास्त्रार्थ मण्डप मे अपने पराभव और हमारे विजय की घोषणा स्वयं कर दो।'

यन्त्रचालित पुतली की भांति उसने वह आज्ञा भी मान ली और घोषणा कर दी। अन्त मे उस मायाविनी ने कहा—'अच्छा' अब तुम राजसभा से चले जाओ और तीन दिनो तक किसी एकान्त देवायतन में सोये रहना।'

सब लोगो को काश्मीरियो की प्रशंसा मे व्यग्र छोड़कर भैरवदत्त चला गया। उस समय किसी ने लक्ष्य न किया कि वह कहाँ जा रहा है।

रात्रि मे भी जब वह घर न पहुँचा तब पिता चिन्तित हुए। उन्होने सोचा 'पराजय की लज्जा से अबोध भैरव ने कही कोई अमगल घटना न घटित कर दी हो।' रात्रिभर भद्रदत्त चिता के कारण सो न सका। प्रात काल ही उसे महाराज का सन्देश मिला——उसके पुत्र के पराजित हो जाने के कारण पुन शास्त्रार्थ के आयोजन का और यह भी उसे आज्ञा मिली कि उसी को शास्त्रार्थ करना होगा।

जागरण, चिन्ता और पुत्र के न मिलने का शोक——इन तीनो से जर्जर वृद्ध का हृदय शास्त्रार्थ की सूचना से उत्साहित न हो सका। पर विवशता थी। राज-आज्ञा माननी ही पडी। शास्त्रार्थ हुआ, पर पूर्व दिन की घटना का पुनरावर्त्तन हुआ।

पराजित होकर भी काश्मीरी विदुषी ने गत दिवस की भाँति अपनी मोहिनी विद्या से पराजय स्वीकार करने के लिए भद्रदत्त को विवश किया और साथ ही उनसे यह भी कहलाया कि इन पण्डित दम्पत्तियो को पाटलीपुत्र में सर्वश्रेष्ठ राज-पण्डित का आसन दिया जाय। अन्त मे धीरे से भद्रदत्त के कान मे उस स्त्री ने यह भी कह दिया–'वन मे जाओ और फाँसी लगाकर जीवन-लीला समाप्त करो।'

भद्रदत्त ने सब कुछ उसके निर्देशो के अनुसार किया और चुपचाप चले गये। काश्मीर के दम्पत्ति राजपण्डित होकर भद्रदत्त के भवन मे रहने लगे। और राज-भवन मे उनका सम्मान बढ गया। अन्तपुर मे भी उन दोनो का प्रवेश हो गया। धन, वैभव और प्रतिष्ठा की विशाल अट्टालिका के उच्च कक्ष मे विलास करने लगे।

भद्रदत्त तो निकटस्थ अरण्य मे फाँसी लगाकर मरा पाया गया और यह कहा गया कि अभूतपूर्व पराजय की लज्जा से उसने अपनी आत्महत्या की। पर भैरवदत्त की लुप्त सज्ञा जब तीन दिनो के पश्चात् लौटी तब नगर के दूरस्थ एकान्त मन्दिर से भटकता घूमता कई दिनो के पश्चात् वह पाटलि-

पुत्र आया। यहाँ सब समाचार सुनकर वह स्तब्ध हो गया। गुरु से उसने जाकर सारी घटना कह सुनायी।

उसने कहा—'वत्स! उस काश्मीरी विदुषी को सम्मोहन विद्या की सिद्धि प्राप्त है। उसकी तान्त्रिक शक्ति के सम्मुख तुम कुछ न कर सकोगे। अब प्रतिशोध का विचार त्याग दो।'

पर भैरवदत्त का अन्तःकरण अन्याय, अपमान और प्राप्त प्रतारणा की ज्वाला में दग्ध हो रहा था। उसने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया उन्हीं दोनों व्यक्तियों को अपमानित करना, उनके जीवन की सुख-शान्ति विनष्ट करना और पाटलिपुत्र के सम्मानित पद से उन्हें नीचे गिराना।

तान्त्रिक सिद्धि प्राप्त कर प्रतिशोध लेने की कामना से वह कामरूप के कामाक्षा मन्दिर में जा पहुँचा।

कापालिक भीषणानन्द की पाँच वर्षों तक अनवरत और भक्तिपूर्ण परिचर्या करने के अनन्तर उसने मारण, उच्चाटन और कीलन की सिद्धियाँ प्राप्त की। अन्त में अपने हृदय का आशय आचार्य भीषणानन्द से व्यक्त किया। आचार्य ने महाकाली श्यामा का अनुष्ठान करने की अनुमति दी और यह भी कहा कि दीपावलि की रात्रि में पाँच वर्षों तक इस अनुष्ठान का वार्षिक आयोजन करना पड़ेगा, जिसमें प्रतिवर्ष क्रमशः बिडाल, मेष, उष्ट्र, महिष और नर के लोमास्थि युक्त मांस की बलि देनी पड़ेगी। पंच मकार की उपासना को अपनाना होगा और भीषण परिस्थितियों को सहना होगा। अन्त में उन्होंने कहा—'वत्स भैरवदत्त, आज से तुम्हें मैं अपना शिष्य दीक्षित करता हूँ परन्तु मैं चाहता हूँ कि इन प्रयोगों की साधना के स्थान पर तुम अणिमादि सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करो।'

पर प्रतिहिंसा की भावना से विकल भैरवानन्द को कुछ अच्छा न लगा। हठ करने पर आचार्य ने महादेवी श्यामा की पंचवार्षिक अनुष्ठान विधि विस्तार के साथ समझाई और पंचमकारोपासना का रहस्य भी बतला दिया।

भैरवानन्द कामाक्षा से काशी चला आया। एक टूटे फूटे मन्दिर में महाकाली की श्यामामूर्ति पाकर वही विधिवत् अनुष्ठान करने लगा। उस मन्दिर मे उसकी एक शिष्या और तीन शिष्य थे। परन्तु शृंगपाल और श्यामलागी, ये दो ही पूर्ण विश्वासपात्र थे।

वाममार्गी उपासना पद्धति के अनुसार अनुष्ठान करते हुए भैरवानन्द को प्रत्येक अमावास्या की अर्द्धरात्रि मे विशेष विधान का आचरण करना पडता था। और दीपावली के दिन तो प्रति वर्ष बडा भारी समारंभ होता था। काशी मे चारो ओर उसकी ख्याति फैल गयी। विद्यार्थियो की भीड वहाँ एकत्र हुआ करती थी। किन्तु जब गभीर ध्वनि मे भैरवानन्द गरजकर सबको चले जाने की आज्ञा देता तब ठहरने का साहस कोई न करता।

[तीन]

विडाल, मेष, उष्ट्र, और महिष की बलि चार वर्षो तक क्रमश दी जा चुकी थी। पाँचवे वर्ष दीपावलि को नर बलि से पूर्णाहुति होने वाली थी। नर बलि के लिए भैरवानन्द ने निश्चित किया कि अपने प्रतिद्वन्द्वी काश्मीरियो के एक मात्र पुत्र का अपहरण करना चाहिए। तदनुसार अपने दो शिष्यो को पता बताकर पाटलिपुत्र भेज दिया। काश्मीरी पण्डित के गृह सेवको को धन का लोभ देकर भैरवानन्द के शिष्यो ने अपना काम साध लिया। दीपावली के दिन मध्याह्न वेला मे बालक भैरवानन्द के हाथो मे समर्पित कर दिया गया। जिस समय बालक की माता को अपने बालक के खो जाने का आभास मिला, उसने ढूँढने का बडा प्रयत्न किया किन्तु कुछ पता न लगा।

अपनी मोहनी-विद्या से अपने घर के सेवको को मोहित कर जब उसने प्रश्न किया तब उन अचेतन सेवको मे से एक ने सारी घटना बता दी और यह भी बताया कि किसी भैरवानन्द के शिष्य बलि के लिए बालक को काशी ले गये है।

एक पल का समय भी नष्ट न करके उसने रथ सन्नद्ध कराया और अपने कुछ अनुचरो को साथ ले काशी की ओर चल पड़ी।

[चार]

महिष-बलिवाली रात के समान उस दीपावली की कृष्णा तमस्विनी मे भी आयोजन हुआ था। ताडव नृत्य हो चुकने पर जब दर्शनार्थी चले गये, तब शृंगपाल ने रक्तवर्ण के पूजनोपकरण एकत्र किये। आज भैरवानन्द ने शृंगपाल को नही वरन् श्यामलागी को बलि-पशुरूप बालक को लाने की आज्ञा दी।

वह जिस समय अपने कक्ष मे सोये हुए बालक को जगाने पहुँची, उस समय निद्रित बालक के भोले मुख को देखकर उसके हृदय का मातृत्व उमड पडा। वह भूल गई कि भैरवानन्द के सकेतो की मै अनुचरी हूँ। वह यह भी भूल गयी कि भैरवानन्द की आँखो में आज्ञा पालन कराने की अमोघ शक्ति है, उससे बचना असभव था। साथ ही वह भूल गयी कि उस कापालिक की क्रूरता, जिसके कारण तनिक सी असावधानी होने पर, आज्ञा पालन मे तिल मात्र विलम्ब होने पर अथवा वाममार्गीय उपासना के अनुष्ठान क्रम में थोडी सी भी उपेक्षा दिखाने पर कितनी क्रूरता के साथ अनेक बार उसकी ताडना हुई थी। उसे ऐसा जान पडा मानो उस बालक की वह साक्षात् जननी है और जैसे भी हो, अपने प्राणो को देकर भी उसकी उसे रक्षा करनी है।

अपना तन, मन और सर्वस्व तान्त्रिक के चरणो मे अर्पित कर जिसने जाने कितने क्रूर और निकृष्ट कर्मो मे आचार्य की आज्ञा पालन करने मे सदा यन्त्र-चालित पुतली के समान व्यवहार किया था, आज वही श्यामलागी मातृत्व के आलोक से उज्ज्वल हो उठी।

इधर भैरवानन्द विलव के कारण व्यग्र हो रहा था, उसके अनुष्ठान मे एक-एक पल का बीतना, उसके लिए असह्य भार हो रहा था दूसरी ओर अपने बालक का पता लगाती हुई काश्मीरी विदुषी भैरवानन्द के महाकाली-मन्दिर मे जा पहुँची। दूर से ही भैरवानन्द की भीषण आकृति और लपलपकर जलती हुई हवनाग्नि को देखकर वह सिहर उठी। चारो ओर आँखे दौडाने पर भी उसे बालक दिखायी न पडा। वह पाँव दबाये हुए धीरे-धीरे शिष्यो के कक्षो की ओर चली। भैरवानन्द से वह अपने को छिपाये चल रही थी। यद्यपि वह पहचान तो न सकी तथापि जलते हुए अगारो के समान आँखे, लम्बी जटा, गले की मुण्डमाला और बढी हुई मूँछ-दाढी देखकर फिर दूसरी बार उधर देखने का साहस वह न कर सकी। कुटियो मे अपने बालक को ढूँढतीको हुई जब वह श्यामलागी के कक्ष मे पहुँची तब श्यामलागी अर्द्धसुप्त बालक को स्नेह के साथ गोदी मे लेकर प्यार से सहला रही थी। अपनी सन्तान को देखते ही वह तीव्र स्वर से बोल उठी।

'मेरा बेटा यहाँ !! इसे चुराकर तू यहाँ बैठी है ? मै पाटलिपुत्र से इसे ढूँढती यहाँ आ रही हूँ। ला, चोर, डाकू कही की '—कहती-कहती श्यामलागी के उत्सग से बालक लेने के लिए झपटी। उसकी बात सुनते ही श्यामलागी ने समझ लिया कि इसी की गोदी सूनी करने का आयोजन हो रहा था। उसके आरोपो से तनिक भी क्रुद्ध न होती हुई, शान्त स्वर से बोली 'भद्रे, इस समय मौन धारण करो, बोलना बच्चे के प्राणो पर सकट उपस्थित कर सकता है। यदि इसकी रक्षा करनी हो तो पहिले मेरे पीछे-पीछे यहाँ से भाग चलो। तब अन्य बाते होगी। बच्चे की माँ ने विना समझे ही सकेत द्वारा स्वीकृति दे दी और अपने बालक को एक टक देखती हुई श्यामलागी के पीछे गुप्त मार्ग से मन्दिर के बाहर निकली।

एक ओर बालक को लिए हुए दोनो स्त्रिया अन्धकार मे भागी जा रही थी और दूसरी ओर मण्डप में बैठा तान्त्रिक बारम्बार श्यामलांगी को पुकार रहा था। शृंगपाल को उसे बुलाने के लिए भेज कर भी वह दौडता हुआ स्वय उसकी कुटी मे जा पहुँचा। स्त्री की एक काली छाया को छिप कर उधर जाते देख वह पहले ही आशंकित हो उठा था। कुटीर को शून्य देख कर उसका हृदय रहस्य समझ गया। गुप्त द्वार से वह भी बाहर निकल कर नगर की ओर जाने वाली पगदण्डी पर श्यामलागी को पुकारता हुआ वेग से दौडने लगा। कुछ दूर तक तो कोई दिखायी नही पड रहा था। परन्तु कुछ ही समय बीतने पर उस गहन अन्धकार मे दो धुँधली मूर्तियाँ दिखायी पडी।

भैरवानन्द की गति तीव्र हो गयी और श्यामलागी को पुकारने का स्वर भी तीव्र तर हो गया। दोनो का अन्तर धीरे-धीरे कम होता जा रहा था और स्त्रियाँ, तान्त्रिक का पुकारना सुन-सुन भयभीत हो रही थी। डर के कारण उनके पाँव काँपने लगे थे और गति मन्द हो रही थी। इतने मे भैरवानन्द ने गरज कर दोनो स्त्रियों को रुक जाने के लिए कहा। उसकी वाणी मे जाने कौन सी शक्ति थी, जिसे सुनते ही स्त्रियों की गति पूर्णत. प्रतिरुद्ध हो गयी। ऐसा जान पड़ा जैसे पावो मे किसी ने बेड़ियाँ डाल दी हो, तान्त्रिक पास पहुँचने लगा।

दूरी अत्यन्त शून्य हो जाने पर श्यामलागी को पुकारते हुए भैरवानन्द ने कहा—

'दुष्टा नारी! इतने दिनो तक मेरे यहाँ रह कर भी यह विश्वासघात!! गुरु के साथ छल का तुझे भयकर फल मिलेगा। सिद्धि के अन्तिम क्षण मे इस कपट का दण्ड तुझे अभी देता हूँ। चल! बालक लेकर अभी मेरे पीछे चल। इसी बालक के साथ आज तुझे भी बलि चढा दूँगा।'

अँगारे की भाँति जलती हुई आँखे देखते ही श्यामलागी मानो भस्म होने लगी। उसकी वाणी यत्न करने पर भी कुछ कह न पा रही थी, बडे प्रयास के वाद उसने कहा--

'आचार्य ! मै तो अपना तन, मन, जीवन सब कुछ आपकी सेवा और साधना के लिए अर्पित कर ही चुकी हूँ। परन्तु इस अबोध बालक का निरपराध मुख और इस ममतामयी जननी की व्यथा मेरे लिए असह्य है। गुरुवर ! चलिये नर-बलि के स्थान मे मेरी आहुति दे दीजिये पर इस नन्हे बालक को मुक्त कर दीजिये।'

'यही मेरी शिक्षा थी ? तन्त्रमार्ग के साधक की शिष्या हो कर भी तू मोह और ममता को जीत न सकी। चल मेरे पीछे बालक ले कर।'

'गुरुदेव ! चलिये, मै चल रही हूँ। पर इस बालक की माँ का कष्ट तो देखिए। इसे छोड दीजिये। मै अपने वध के लिए सहर्ष प्रस्तुत हूँ।'

'पापिनी ! क्या इसी ने तुझे बहकाया है ? तू इस पिशाचिनी पर दया दिखा रही है ? मेरे पिता की हत्या करने वाली और मेरे जीवन के शीतल उपवन को दावाग्नि से जलाने वाली इस मायाविनी को तू नही जानती। कदाचित् यह भी मुझे नही पहचान रही हो।' कहते कहते भैरवानन्द उस विदुषी की ओर घूम कर देखते हुए बोला—"और तू ! मुझे पहचान रही है ? मै हूँ भद्रदत्त का पुत्र भैरवदत्त। मेरे पिता ने आत्म-हत्या की तेरी मोहिनी-विद्या के प्रभाव से। मै गृहहीन हुआ, राज-सम्मान नष्ट हुआ, तेरे अभिचार के कारण। अभी क्या देख रही है, यह तो मेरी प्रतिहिंसा का श्रीगणेश है। उसी पाटलिपुत्र मे तुझे और तेरे पति, दोनो को शृगाल और श्वानो का भक्ष्य बनना पडेगा। चल, तू भी चल ! अपने पुत्र की बलि देख।'

मन में प्रतिरोध करती हुई श्यामलागी तन्त्र-शक्ति के आगे अशक्त हो गयी। वह चुपचाप इच्छा न रहते हुए भी आचार्य के पीछे चलने को

उद्यत हुई। पर काश्मीरी विदुषी ने तान्त्रिक के चरणो पर मस्तक रख दिया और आँसू का अर्घ्य चढाती हुई करुण स्वर से बोली—'तान्त्रिक तुम्हारी शक्ति के सामने मैं पराजित हुई। तुम्हारे और तुम्हारे पिता के साथ कपटाचार करने पर आज मुझे अनुताप हो रहा है। मैं क्षमा चाहती हूँ आचार्य।'

'तुम आज क्यो न क्षमा माँगोगी! पुत्र की वलि दी जाने वाली है न? पर उस दिन तुम्हारी क्षमा कहाँ थी जिस दिन शास्त्रार्थ मे पराजित हो कर भी मोहनी-शक्ति की माया से विजेता और उसके पिता का तूने सत्यानाश कर डाला। नारी हो कर भी तुझमें इतनी क्रूरता? छोड़ मेरा पाँव। तुझ पापिनी का स्पर्श भी ज्वाला से अधिक उष्ण है।'

श्यामलागी की गोद से वालक को लेती हुई विदुषी ने कहा—'तांत्रिक! मैं लज्जित हूँ और अपने पापों पर मुझे पश्चात्ताप हो रहा है। मेरा जीवन ले लो, मेरा वैभव ले लो, पर वालक की रक्षा करो। चलो मेरे साथ पाटिलपुत्र और अपनी सम्पत्ति का अधिकार ले लो अपने हाथो में। इस वालक को भी अपनी ही सरक्षकता मे रखो। हम पति-पत्नी दोनो ही पापो का प्रायश्चित करते वन चले जायगे।'

'मायाविनी! मैं तेरे वाग्जाल मे नही फसूँगा। जव एक ही प्रहर में साधना सफल होने वाली है और सभी शक्तियाँ सूर्योदय के साथ मेरी चरण वन्दना के लिए उपस्थित होने वाली है तव तेरी बातों के प्रलोभन में पड कर मैं अपना भविष्यत् नष्ट न करूँगा। आज इस बालक की वलि दे कर अपनी तन्त्रोपासना पूर्ण करूँगा। तुम जाओ पाटिलपुत्र। अपनी रक्षा का उपाय करो। और श्यामलागी! छीन ले इस पापिनी के अंग मे वालक और चल मेरे पीछे।

यन्त्रपुतली की भाँति श्यामलागी, उस विदुषी के पास गयी और झपट कर उसके अङ्क से शिथिल हाथो द्वारा वालक लेने का प्रयास करने लगी।

इतने मे ही विदुषी ने श्यामलागी के आँखो को घूर कर देखते हुए कहा—
'अलग हटो नारी।'

श्यामलागी हट गयी। भैरवानन्द कुछ कहे—इसके पूर्व ही उसके चरणो पर वालक को सुलाते हुए, विदुषी ने कहा—

'तान्त्रिक, यह लीजिये ! वालक आपकी शरण मे छोड कर मै जा रही हूँ, अपने पति के साथ पाटिलपुत्र का अर्थ-वैभव और राज-सम्मान त्याग कर मै वन मे चली जाऊँगी। मेरी प्रार्थना है, आँचल पसार कर मै आप से भीख माँगती हूँ कि इस बालक को अपना पुत्र समझ कर इसका पालन-पोषण करना और अपने समान विद्वान् बनाना। मै जा रही हूँ। तुम्हारी इच्छा हो, मेरी याचना स्वीकार करना या चाहे . 'कहते-कहते उसका कण्ठ वाष्पवेग से अवरुद्ध हो गया और आँखो से सावन की वर्षा होने लगी। अपने आँचल से आँसू पोछ कर एक वार उसने तान्त्रिक की ओर देखा और उसके लोचनो मे करुणा की झलकती मुक्ता देख कर पल भर भी बिना रुके और तान्त्रिक का प्रत्युत्तर सुने रथ की ओर वह भाग चली।

स्नेह भरे नयनो से भोले वालक की ओर तान्त्रिक देखने लगा। वह भूल गया अपना अनुष्ठान, अपने वर्षों की कठोर तपस्या और सिद्धि-प्राप्ति की अन्तिम रात्रि। ममता-कम्पित करो से उसने जागने की चेष्टा करते हुए वालक को उठा कर अपने अक मे चिपका लिया और आँखे मूँद कर वात्सल्य के परमानन्द का अनुभव करने लगा। और श्यामलागी लगी देखने निर्निमेष लोचनो से तान्त्रिक के हृदय का अकल्पित परिवर्तन ! ! !

शे शे

सुश्री कमलिनी मेहता

'टन, टन, टन ..'

मध्य रात्रि की घोर निस्तब्धता घण्टे की गम्भीर ध्वनि से काँप उठी—मेरी भी निद्रा भग हो गयी। मैं दिन भर की यात्रा से थक कर वहीं, घण्टे घर की चबूतरी पर सो गयी थी। उस सन्नाटी रात मे घण्टे की ध्वनि बड़ी ही भयावनी लग रही थी। क्रमश उसका कर्णभेदी नाद बन्द हो गया और उसका स्थान एक धीमी कराह 'शे शे' ने ले लिया। वह कराह इतनी दर्द भरी थी कि मैं चौक पडी, अनायास मेरे मुख से निकल पड़ा— 'यह कौन 'शेशे' की ध्वनि कर रहा है ?'

'यह मेरी ध्वनि है।'—मै और अधिक चकित तथा स्तम्भित हो उठी। आँखे फाड-फाड कर अधकार मे इधर उधर घूरने लगी पर कोई भी दिखायी न पडा। मेरा हृदय भय से काँप उठा, फिर भी मैंने साहस बटोर कर प्रश्न किया।

'तुम कौन हो, कहाँ हो ?'

'मैं तुम्हारे सिर के ऊपर हूँ, चीन देश का विशाल घण्टा हूँ।'

'क्या कहा, घण्टा ? अद्भुत ! तुमने मानवीवाणी कहाँ से पायी ?'

'ससार में कभी-कभी ऐसी भी घटनाएँ हो जाती है जिन्हे देख कर मनुष्य अचम्भे में पड़ जाता है। क्या तुमने कभी यह भी सुना है कि किसी घण्टे का निर्माण करने मे पिता को अपनी पुत्री का बलिदान करना पडा हो।'

'अर्थात् ?'

'अर्थात् यही कि मुझे साँचे मे ढालने के समय धातु के साथ धातु-विज्ञान कुशल कुआयूँ की सुन्दरी कन्या का रक्त भी मिलाया गया।'

शे शे

'तुम बड़ी ही विचित्र बातें कर रहे हो। मैं कुछ समझ नही पा रही हूँ।'

'अच्छा सुनो, आज मैं तुम्हे ऐसी रोमाचकारी कथा सुनाता हूँ कि तुम्हारी आत्मा सिहर उठे, तुम्हारे प्राण काँप जायें।'

'आज से दो सौ वर्ष पूर्व'—और मैं आँख फाडे सुनती जा रही थी।

'उन दिनो चीन का सम्राट् था यूगलो। उसने अपनी राजधानी को गगनचुम्बी प्रासादो तथा सुमन वाटिकाओं से अलकृत कर के उसे ससार की समस्त पुरियो की रानी बना रखा था। भवन निर्माण की पूर्णाहुति के समय उसने एक विशाल घण्टाघर बनवाया और उसमे स्थापित करने के लिए एक ऐसे विशाल घण्टे की कल्पना की जिसकी ध्वनि से सम्पूर्ण पेकिङ् नगरी का कोना-कोना गूँज उठे।

घण्टे के निर्माण का कार्य प्रसिद्ध धातु-विज्ञान कुशल कुआयूँ को सौंपा गया। वह सम्राट् की इस कृपा पर फूला नही समाया। शीघ्र ही उसने अपना सम्पूर्ण ज्ञान मथ कर एक साँचा तैयार किया और घण्टे के लिए ताँबा, कासा, पीतल पिघला कर एक धातु तैयार की।

साँचा भरने का दृश्य देखने के लिए समस्त पेकिङ् टूट पडा। अपार जनसमूह देख कर कुआयूँ का हृदय अपूर्व उल्लास तथा गर्व से भर उठा। वह अपूर्व दृश्य सम्राट् भी देखने का लोभ न सम्हाल सके, वे भी वहाँ उपस्थित थे। किन्तु ज्यो ही धातु साँचे मे डाली गयी, त्योही साँचा तडाक से टूट गया। कुआयूँ सिर थामकर वही बैठ गया—उसकी आशालता पर तुषार-पात हो गया। समस्त जनता मे हो-हो होने लगा। सम्राट् उसकी इस असफलता पर झल्ला उठे और उसी समय उसे अपनी यह कठोर आज्ञा भी सुना दी—मैं एक बार और तुम्हें अवसर देता हूँ पर यह स्मरण रहे कि दूसरी बार की असफलता तुम्हारे धड पर सिर न रहने देगी।'

आत्मग्लानि तथा लज्जा से भरा वह घर लौटा और चुपचाप अपनी

चटाई पर जा पडा। दु ख तथा क्षोभ के गर्म गर्म आँसू उसके कपोल भिगोने लगे—आज पहली बार उसकी विद्या का परिहास हुआ था।

कोआई ने अपने दुखी पिता को देखा—उनका कातिहीन थका हुआ अश्रु प्लावित मुख देखा—व्यथा से उसका हृदय अधीर हो उठा, काँपते हुए अधरो से उसने पुकारा—

'पिताजी।'

पिता ने आँखे खोली और अपनी इकलौती बेटी को हृदय से लगा वह एक बार फिर फूट-फूट कर रो पडा। कोआई भी रोने लगी। जब आँसू कुछ थमे तब कुआयूँ ने उसे अपने दुर्भाग्य की सम्पूर्ण कथा और साथ ही कठोर राजाज्ञा सुनायी।

क्षण भर कोआई एक टक पिता के मुख की ओर देखती रही फिर धीरे से बोली—

'पिताजी! मनुष्य को असफलता से विचलित नही होनी चाहिए। आप फिर से प्रयास कीजिये। ईश्वर दयालु है, वह अवश्य इस वार सहायता करेगा। मैं भी उससे प्रार्थना करूँगी।'—और कुआयूँ फिर एक बार दत्तचित्त होकर धातु शास्त्र की पोथियाँ उलटने लगा।

उस रात कोआई सो न सकी। उसका नन्हा सा मन यही सोचता रहा कि कही से ऐसी शक्ति मिल जाय कि उसके चमत्कार से मेरे पिता का दुःख दूर हो जाय। अचानक उसे उस पुंगी का स्मरण हो आया जो दूर दो पहाडो की तलहटी की कदरा मे रहता था और जो प्रसिद्ध भविष्य वक्ता भी था। उसका हृदय आशा से प्रफुल्ल हो उठा।

दूसरे दिन—

प्रत्यूष वेला में ही वह बडा साहस बटोर कर चल पडी उस पुंगी के पास। जिस समय वह कदरा के निकट पहुँची प्राची में सूर्योदय हो रहा था, और पुंगी उसी ओर अपना मुख किये अपना वाम हस्त ऊपर उठाये एक

शिला पर खडा था। उस अपूर्व दृश्य को देख कर उसका हृदय एक अनिर्वचनीय सुखद भावना से भर उठा। उसने पुगी को प्रणाम किया।

एक नन्ही वालिका को सम्मुख खडा देखकर पुगी चकित हो उठा।

'वालिके, तुम कौन ?'

'मै कोआई हूँ, आपसे भाग्य फल पूछने आयी हूँ।'

पुगी मुस्कराया—'तुम्हे कौन सा दु ख है ?' और आँसू भरे नेत्रो तथा भर्राये कण्ठ से उसने अपने पिता के दुर्भाग्य की कथा सुना डाली।'

'मै पूछना चाहती हूँ कि इस वार तो मेरे पिता को सब के सामने लज्जित न होना पडेगा ?'

पुगी क्षण भर उस विचित्र तथा पितृभक्त वालिका की ओर देखता रहा फिर आकाश की ओर दृष्टि उठा कर कुछ विचार करने लकगा। सहसा वह वोल उठा—

'यह घण्टा तभी ठीक उतरेगा जब उसके साँचे मे धातु के साथ किसी भली कन्या का रक्त भी मिलाया जाय।'

कोआई के नेत्र प्रसन्नता मे चमक उठे, उसने वडी ही श्रद्धा के साथ पुगी को प्रणाम किया और दौड पडी अपने पिता को यह सुसम्वाद सुनाने।

'इस वार घण्टा ठीक वनेगा, पिताजी।'

'सच क्या ?'

'हाँ मै जो कहती हूँ। ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुन ली है।'

'तेरे मुँह मे घी शक्कर'—और पिता ने अपनी लाडली बेटी को हृदय से लगा कर प्यार से उसका मस्तक चूम लिया।

फिर वही वेला आ पहुँची। आज पहले की अपेक्षा कई गुनी अधिक भीड थी। कुआयूँ का हृदय उस नि.शब्द तथा निर्निमेष दृष्टि से अपनी ओर देखती हुई उस भीड को देख कर अज्ञात भय से काँप उठा।

ईश्वर का नाम ले कर ज्यो ही धडकते दिल से उसने साँचे मे धातु डाली कि उसके कानो ने एक चीत्कार सुनी 'पिताजी!' और कोआई उसकी आँखो के सम्मुख ही उस तरल अग्निमय धातु धारा मे कूद पडी। पिता पुत्री को बचाने के लिए झपटा पर उसके हाथ लगा केवल उसके पैर का एक जूता। वह मूर्छित हो कर वही गिर पडा। समस्त जनता अवाक् हो कर उस अनहोनी घटना को देखती रही। इस वलिदान का रहस्य कोई न समझ सका।

कोआई को अपने हृदय मे रख कर मै तैयार हो गया। पर मेरा जन्मदाता दु:ख और शोक से पागल हो गया और जब तक जीवित रहा बस मेरे चारों ओर फेरे लगाता रहा। कभी-कभी दु:ख तथा क्रोध से अधीर हो कर वह मुझे बुरी तरह झकझोर-झकझोर कर वजाता और उतने ही ऊँचे स्वर मे 'कोआई, कोआई' चीखता रहता जब तक कि वह स्वय थक कर मूर्छित हो कर न गिर पडता।

एक दिन रात्रि भर उसने पेकिङ् निवासियो को सोने न दिया—वह मुझे वजाता रहा और 'कोआई, कोआई' तब तक पुकारता रहा जब तक कि उसके प्राण पखेरू न उड गये। प्रात:काल वह मेरे ही नीचे मृतक पाया गया—और अचानक फिर घण्टा धीर ध्वनि मे 'टन, टन' बोल उठा, उसके वाद वही परिचित 'शे शे' की कराह।

मै कुछ क्षण चुप बैठी प्रतीक्षा करती रही कि वह अब और कुछ आगे बोलेगा—पर वह शान्त था, मूक था और मैने देखा, प्राची में सूर्योदय हो रहा था।

नोट—'शे शे' चीनी भाषा मे जूते का नाम है।

डावा

सुश्री उमा कुमारी

स्वर्ण गिरि की उपत्यका मे अमिताभ की अमर वाणी को फैलाता हुआ नेनवोरी जोन का वह देवालय सध्या के आलोक में पीताभपूर्ण हो उठा। तथागत की स्फटिक मूर्ति से वही प्रेम, शान्ति और पवित्रता टपक रही थी और उससे सिक्त था वह पर्वत प्रान्त। दीपक के क्षीण आलोक मे एक बालिका तथागत के सम्मुख बैठी थी। उसके नेत्र बन्द थे और मुख पर शान्ति और पवित्रता व्याप्त थी। वह थी तिब्बती लामा शब्दग की एकमात्र पुत्री डावा।

दुर्गम घाटी को पार कर वह नित्य इसी वेला मूर्ति के सम्मुख बैठ कर उस पुनीत आत्मा का स्मरण करती और ध्यानमग्न हो जाया करती थी। आज भी नित्य के समान वह ध्यानमग्न थी। इसी प्रकार एक प्रहर व्यतीत हो गया। अम्बर की तारक माला के झिलमिल प्रकाश में क्षितिज का आलिंगन करती हुई हिमाच्छादित पर्वत मालाएँ हिम से शृंगार करने लगीं। पर्वत का कण-कण उस रजत शृंगार से पुलकित हो उठा। बालिका ने नेत्र खोले और तथागत की मूर्ति के सम्मुख अपना मस्तक श्रद्धा से झुका दिया। विलम्ब हुआ जान कर उसने अर्चना पात्र उठाये और चल पडी। उसके कन्धे पर पीत वर्ण का रेशमी वस्त्र नीचे तक लटक रहा था। कमर में वैसा ही पटकल लिपटा हुआ था, और नीचे चीनी ऊन का नेमा धारण किए हुए थी। वायु में लहराते हुए उसके वस्त्रो मे सुनहरी आभा उसकी पवित्रता के साथ चारो ओर छिटक रही थी। हाथ मे अर्चना-पात्र लिए वह बालिका पर्वतीय मार्ग से घर की ओर बढ रही थी। तारकमाला के क्षीण प्रकाश में दो अस्पष्ट छाया उसे दूर पर दिखलायी पडी। आज इस

निर्जन वेला मे उस चिर परिचित मार्ग पर किसी को देख कर उसे कौतूहल हुआ। क्षण भर मे वह वहाँ जा पहुँची, किन्तु दोनो मे से किसी ने उसे नही देखा। उसने सुना पथिक कह रहे थे—'सारिपुत्र गुप्तचर है, उन्हें मृत्यु-दण्ड मिलेगा।' वे जा रहे थे उसी ओर, उन्हें बन्दी करने। बालिका अधिक न रुक सकी। उस ध्वनि ने उसकी सम्पूर्ण चेतना नष्ट कर दी। उसे प्रतीत हुआ मानो हिमकिरीतट धारण किए हुए विश्व सम्राट् भी सारिपुत्र की मृत्यु घोषणा कर रहे हो। उसके मुख का स्वाभाविक उल्लास न जाने कहाँ विलीन हो गया, उसका शरीर अवसन्न हो चला और आगे बढने की शक्ति उसमे न रही। उसे प्रतीत हुआ मानो मेरा सम्पूर्ण शरीर निर्जीव हो गया है।

'मानव सेवा का व्रत धारण करने वाले सारिपुत्र गुप्तचर है।' रह रह कर यह भावना उसके मस्तिष्क को मथने लगी। तब क्या यह सब ढोंग है, धर्म के आवरण मे क्या वे राजनीतिक चाल चल रहे हैं। किन्तु उसका हृदय इसे स्वीकार नही कर सका। सारिपुत्र पर उसे श्रद्धा थी और विश्वास था कि तथागत के वे भक्त असत्य वाणी नही कहेंगे। तब क्या होगा? वह भयभीत हो उठी। समीप ही ब्रह्मपुत्र नद हर-हर करता हुआ श्वेत हिमाच्छादित चट्टानो पर प्रबल वेग से आगे बढ रहा था। टावा का ध्यान उन पर था। उसे आज सम्पूर्ण प्रकृति निर्जीव और शून्य प्रतीत हो रही थी। भविष्य मे होने वाली सम्पूर्ण घटना उसे नेत्रो के सम्मुख स्पष्ट दिखायी दे रही थी। वह देख रही थी जल्लादो के बीच घिरे हुए सारिपुत्र, तथा अपने पिता को। उसका शरीर सिहर उठा।

उसने सुनी दूर पर जाते हुए पथिको की अस्पष्ट वाणी—'स्वयं तथागत भी उनकी रक्षा नही कर सकते।' बालिका की लुप्त होती हुई चेतना लौट आयी। उसे क्रोध हो आया। उस अमर आत्मा का यह अपमान। उसे अपनी आराधना पर विश्वास था। उसने दृढ़ स्वर में

कहा—'तथागत ही रक्षा करेगे' और वह उठ खडी हुई। उन रुपहली पगडण्डियो पर यह हिमवाला विद्युत् गति से आगे बढ चली।

पूर्वीय क्षितिज श्याम वर्ण की घटाओ से धूमिल हो गया। चमकती हुई उन रुपहली पगडण्डियो ने अचानक अपने श्यामल पट मे उस हिम-कन्या को छिपा लिया। और सनसनाती हुई वायु और मेघो के गर्जन ने उसकी पद ध्वनि अपने मे विलीन कर उसकी रक्षा की।

आगे हरहर करता हुआ ब्रह्मपुत्र था और उस पार थी सारिपुत्र की कुटिया। डावा शीघ्रता से बढ रही थी, और आगे आगे वे सैनिक। डावा तट पर पहुँची किन्तु उसके पहले ही सैनिक नौका पर बैठ कर आगे बढ चुके थे। वह निराश हो गयी। उस भीषण रजनी मे जब मेघ अपने गर्जन से उन ऊँचे शिखरो को कम्पित कर रहे थे उसने चारो ओर दृष्टि डाली किन्तु कही भी दूसरी नौका नही दिखलायी दी। वह जल मे उतर पडी, किन्तु अर्ध रात्रि मे जल की शीतलता ने उसके पगो को आगे बढने से रोक दिया। व्याकुल नेत्रो से उसने चारों ओर दृष्टि डाली और फिर साहस कर आगे बढी। शिला के समीप एक छोटी सी नौका दिखलायी पडी, किन्तु उसका कर्णधार वहाँ न था। वह प्रसन्नता से उस पर बैठ गयी और वेग से उसे खेने लगी। एकाएक उसके हाथ से पतवार छूट कर अनन्त जल मे विलीन हो गयी और नौका प्रबल वेग से दूसरी ओर बह चली। डावा शीघ्रता से कूद पडी और शीतल जल मे आगे बढ चली। उसका शरीर प्रतिक्षण अवसन्न होता जा रहा था, और वह आगे बढ रही थी। तट पर पहुँच कर वह निर्जीव हो कर हिमाच्छादित पथ पर गिर पडी। उसके पग निर्जीव हो गये, उन्होंने अपनी शक्ति खो दी।

डावा देख रही थी कि सैनिक बढते जा रहे है और वह निर्जीव होकर पडी है। उसका हृदय क्रन्दन कर उठा। उसे निश्चय हो गया कि वे सैनिक सारिपुत्र को बन्दी कर कुछ ही क्षणों मे इधर मे लौटेगे। उसकी लुप्त होती

हुई शक्ति पुन लौट आयी और वह उठ खडी हुई।

सारिपुत्र के द्वार खुले हुए थे और दोनो सैनिक अन्दर थे। डावा ने दूर से देखा और प्रसन्न हो उठी। उसे निश्चय हो गया कि सारिपुत्र इस समय घर पर नही हैं। वह वढी और द्वार पर जा पहुँची। सैनिको ने दृष्टि उठा कर पूछा—'कौन?'

कंपित कण्ठ ने उत्तर दिया—'शीत के कारण शरीर अवसन्न होता जा रहा हूँ। बाहर वर्षा हो रही है। केवल इस भीषण वेला में विश्राम चाहती हूँ।'

अर्ध निशा मे शीत से व्याकुल हुई वालिका को देख कर सैनिको को दया आ गयी।

वालिका भीतर गयी। दोनो सैनिक मदिरा पान कर रहे थे, कुछ ही क्षण पश्चात् वे पृथ्वी पर गिर पडे। और बेसुध हो गये। डावा ने सारिपुत्र की आवश्यक वस्तुएँ उठायी और धीरे से बाहर हो ली। उसने द्वार कुशलता से बन्द कर दिया और आगे वढी। वह जानती थी कि रिंगपुरी के मन्दिर के अतिरिक्त सारिपुत्र और कही नही जा सकते।

दूर पहाडी पर झरनो के मध्य वह सुन्दर देवालय स्थित था। वह आगे वढ रही थी। और पर्वतीय वायु उसके शरीर को बेधे डाल रही थी। किन्तु वह प्रसन्न थी। दूर पर उसने देखा एक पथिक याक पर जा रहा है। डावा ने सम्पूर्ण शक्ति लगा कर उसे पुकारा और रिंगपुरी तक पहुँचा देने की याचना की। पथिक ने उसे याक पर लाद लिया।

× × × ×

खट! खट! खट! ध्वनि अपने द्वारपर सुनकर ध्यान मग्न तथागत के भक्त चौक उठे। उन्होने पूछा—'कौन?'

चिरपरिचित मधुर कण्ठ ने उत्तर दिया—'मैं हूँ।'

निशीथ की उस भीषण तमिस्त्रा में जब मेघ हिमाच्छादित शिखरों

को अपनी शक्ति की चुनौती देकर आगे बढ रहे थे, सारिपुत्र उस कण्ठध्वनि को सुनकर शंकित हो उठे। उन्होने तुरन्त उठकर द्वार खोला। बालिका ने भीतर प्रवेश करते हुए कहा—'सारिपुत्र!'

'तुम! डावा! इस भीषण वेला मे यहाँ कैसे?'

डावाने कंपित कण्ठ से पूछा 'सारिपुत्र आप गुप्तचर है?'

'क्या इसी शका के समाधान के लिए इस समय कष्ट किया?'

सारिपुत्र हँस पडे। उन्होने स्नेह पूर्ण कण्ठ से कहा—'चलो तुम्हे घर पहुँचा दूँ।' डावा ने पुनः वही प्रश्न किया 'आप गुप्तचर है?' और उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये।

'आज मेरे उपर तुम्हे अविश्वास क्यो हो रहा है?'—आश्चर्य से सारिपुत्र ने कहा।

'मै जानना चाहती हूँ!' डावा की वाणी मे दृढता थी।

'डावा! तथागत का भक्त कभी असत्य वाणी नही कहता। भारत मे मैंने तुम्हारे पिता की प्रशंसा सुनी और उनके उपदेश ग्रहण करने के लिए चीनी लामा के वेश में मै तिब्बत मे प्रवेश कर सका। किन्तु आज एकाएक तुम्हे मेरे ऊपर सन्देह क्यो हो रहा है।'—सारिपुत्र ने जिज्ञासा पूर्ण स्वर से कहा।

डावा मौन थी।

सारिपुत्र ने पुन कहा—'बोलो डावा' तुम्हे मेरे ऊपर अविश्वास क्यो हो रहा है?'

'मै अविश्वास नही करती'—और फिर उसने पूरी घटना सुना दी।

सारिपुत्र अवाक् थे। कुछ क्षण मौन रह कर उन्होने कहा—'तुम्हे इस पर विश्वास है?'

'नहीं'।—डावा के स्वर में दृढता थी।

'किन्तु सब इसी पर विश्वास करेंगे। डावा! मुझे आश्रय देने के कारण तुम्हारे पिता का तथा तुम्हारा जीवन सकटापन्न हो गया।'—सारिपुत्र

की वाणी में क्षोभ था। अत्यन्त कष्ट से उन्होने कहा—'मैं मृत्यु से नहीं डरता किन्तु तुम दोनो को विपत्ति मे डालकर मेरी आत्मा अत्यधिक कष्ट से प्रयाण करेगी।'

'किंतु म आपको बचाऊँगी! तथागत मेरी सहायता करेगे!'

'यह नही हो सकता बहन, पितृ तुल्य शब्दग को घोर आपत्ति मे डालकर अपने जीवन की रक्षा मैं नही करना चाहता।'

'अब तर्क करने का समय नही। राज-प्रतिनिधि के सैनिक आते ही होगे। चलिये, शीघ्र पिता को सूचना देकर गुप्त पहाडी मार्गों से मैं आपको तिब्बत के बाहर पहुँचा दूँगी।'—शीघ्रता करते हुए डावा ने कहा।

सारिपुत्र उसी प्रकार निश्चल बैठे रहे।

'चलिये! इस भीषण वेला मे गुप्त मार्ग पूर्णतया सुरक्षित होंगे!'

'पिता और बहन को खोकर मुझे जीवित रहने की इच्छा नहीं।'

'नही, आपको चलना ही होगा'—डावा की वाणी मे दृढता थी।'

'हठ न करो बहन! मुझे यही रहने दो।'

'मेरे इस अन्तिम अनुरोध की उपेक्षा मत कीजिये, सारिपुत्र, शीघ्र चलिये।'

भावी आपत्ति की सूचना आवश्यक जान सारिपुत्र डावा के साथ लामा शब्दग के समीप चल पडे।

मेघाच्छन्न पथ अन्धकार की काली चादर मे ढँका जा रहा था। रात्रि की स्तब्धता बढती जा रही थी। ब्रह्मपुत्र का भीषण रव हृदय को कंपित कर रहा था। उस अर्धनिशा में दुर्गम पथो को पारकर दोनों शब्दग के समीप जा पहुँचे।

शब्दग शांति पूर्ण सब घटना सुनकर विचारमग्न हो गये। कुछ क्षण पश्चात् उन्होने डावा की ओर मुख फेरा और उसे सारिपुत्र को गुप्त मार्ग से तिब्बत के बाहर पहुँचा देने का आदेश देकर उठ खडे हुए। सारिपुत्र ने

आपत्ति की किन्तु पिता और पुत्री के सम्मुख उनके सम्पूर्ण तर्क स्थिर न रह सके ।

'तब आप भी इसी क्षण हम लोगो के साथ चलिये ।' सारिपुत्र के वाणी मे याचना थी ।

'जब मैंने कोई पाप नही किया, अपराध नही किया तब मुझे किसका भय । तथागत के सम्मुख मैं निर्दोष हूँ । यदि मृत्यु भी आयेगी तो मैं उसका सहर्ष आलिगन करूँगा । किन्तु तुम अतिथि हो । तुम्हारी रक्षा करना मेरा धर्म है ।'

सारिपुत्र मौन थे । शोक के आधिक्य से उनकी वाणी ने अपनी शक्ति खो दी थी ।

शब्दग ने पुनः कहा—'इन बहुमूल्य क्षणो को नष्ट मत करो, डावा ! डावा ! सारिपुत्र को शीघ्र गुप्त मार्ग से तिब्बत की सीमा के बाहर पहुँचा दो! सावधानी से जाना ।' और अपना स्नेह विह्वल हाथ उठाकर दोनो को आशीर्वाद दिया । इस अन्तिम मिलन के समय तीनो के नेत्र सजल हो गये ।

× × × ×

नन्हे अश्व पर सभी कुछ रखकर उस अर्ध निशा मे पथ दिखाती हुई डावा आगे बढ रही थी और उसके पीछे थे सारिपुत्र । हृदय की ममता उनके पग पीछे खीचती थी और गुरुका आदेश उन्हे बरबस आगे ढकेलता था । किसी प्रकार वे बढते जा रहे थे । हिम से दोनो का शरीर ढँक गया और निर्जन पगडण्डियो मे अपने को छिपाते वे बढते जा रहे थे । आहट होने पर भय से दोनो चौंक उठते थे । उनका शरीर शिथिल हो चुका था किन्तु इतने विशाल पर्वतराज हिमालय मे भी विश्राम के लिये स्थान मिलना कठिन था ।

इसी प्रकार दो दिन व्यतीत हो गये । अब वे अपनी तिब्बत की सीमा को पार कर चुके थे ।

वही धूमिल सध्या थी—मलिन और उदास ।

एकाएक डावा रुक गयी ।

'अब मुझे विदा दो सारिपुत्र !' –सजल नेत्रो से डावा ने कहा ।

'डावा ..' सारिपुत्र का कठ अवरुद्ध हो गया । वे आगे नही कह सके

'अब हम लोग तिब्बत की सीमा के बाहर है, यहाँ से आप निर्विघ्न भारत पहुँच सकते हैं ।'–किसी प्रकार डावा ने वाक्य समाप्त किया ।

'न जाने किन बुरे क्षणो मे मैने तिब्बत मे प्रवेश किया कि मेरे ही कारण देवतुल्य शब्दंग और तुम. ' सारिपुत्र का वाक्य उसके अश्रुओं ने पूर्ण कर दिया ।

'सारिपुत्र ! इस घटना से अपने हृदय की शाति को दग्ध मत कीजिये । कष्ट ही मनुष्य की कसौटी है ।'

दोनो मौन थे।

कुछ क्षण पश्चात् सारिपुत्र ने कहा—'डावा ! तुम्हारा स्नेह इसी प्रकार सदैव मुझे पथ प्रदर्शित करता रहेगा।'

कठ तक आकर डावा की वाणी रुक गयी।

'अब विदा दो।' कष्ट पूर्ण स्वरो मे सारिपुत्र ने कहा। उसके नेत्र सजल हो गये। अश्रुवर्षा से वह धूमिल सन्ध्या और भी धूमिल हो उठी। उसी क्षीण आलोक मे डावा ने तथागत के उस पुजारी को विदा दी। रुपहली पगडण्डियो पर जब तक सारिपुत्र दिखलायी पड़ते थे वह उसी ओर देखती रही। अन्त में वह अस्पष्ट छाया भी सर्वदा के लिए विलीन हो गयी। डावा ने एक दीर्घ निश्वास ली और लौट पडी।

× × × ×

पूर्व परिचित ध्वनि सुन कर उसने मुख उठाया। स्वर्णगिरि की उपत्यका मे स्थित वही नेनवोरी जोनका मन्दिर था। नित्य की भाँति उसके घण्टे का रव था। सब कुछ ज्यो का त्यो था किन्तु था शून्य और उदास।

डावा नही जान सकी कि कब वह दुर्गम पथ पार कर यहाँ आ गयी। उसने मन्दिर में जा कर तथागत को प्रणाम किया और आगे बढी। वही स्थान था जहाँ से इस घटना का सूत्रपात हुआ था। और आगे था भीषण रव करता हुआ पूर्व परिचित ब्रह्मपुत्र। डावा चौक पडी उस उमडते हुए जनसमुदाय को देख कर। ब्रह्मपुत्र के तट पर असख्य नर-नारियो का समूह क्यो! और फिर इतना कोलाहल! डावा क्षण भर मे तट के ऊँचे शिला-खड पर चढ गयी। उसने देखा अपने पिता को और काल रूप जल्लादो को। शब्दग के शरीर मे पत्थर बँध चुका था और जल्लाद नदी मे डालने जा रहे थे। जनता चिल्ला उठी—'यह अन्याय है, देवतुल्य शब्दग निर्दोष है। शब्दग ने हाथ उठा कर नमस्कार किया और जल्लादो ने उन्हे उठाया। राज-प्रतिनिधि के सैनिको ने उसे देखा और तुरन्त पहचान लिया।

क्षण भर पश्चात् डावा भी बन्दिनी थी।

डावा के नेत्र मुँद गए और क्षण भर मे किसी अज्ञात शक्ति के वेग से उसने अपने समस्त बन्धनो को तोड दिया और वह पिता के साथ ही ब्रह्मपुत्र के जल मे विलीन हो गयी।

सारिपुत्र की यात्रा समाप्त होने के पहले ही शब्दग और डावा की यात्रा समाप्त हो गयी।

"सूली ऊपर सेज पिया की"

श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

[एक]

"डुगडुग, डुगडुग, डुगडुग।"

इधर चाँदनी चौक के पूर्वी द्वार पर डौंडी वाला डुग्गी पर चोट देकर चिल्लाया—"खल्क खुदा का, मुलुक बादशाह का, हुकुम कम्पनी बहादुर का. . . . । भगड़ भिक्षुक को पता बताय के जो पकड़वाय गा तिसको पाँच सौ कलदार इनाम दिया जायगा और जो जान के विसका पता छिपावेगा, सो तकसीर भरेगा।" ....

"डुगडुग, डुगडुग, डुगडुग।" और उधर उसी समय उत्तरी द्वार से झाँझ की झनकार के साथ आवाज आई ढब, ढब, ढपाढप, ढप, ढबाढब ढब और उमंग से चंग बजाता हुआ स्वयं भगड़ भिक्षुक बाजार में घुसा। अपनी सुरीली, दर्द भरी और ऊँची आवाज में वह लावनी गा रहा था—।

'मत पास पहुँच हरि के, विधि के बुध के निगंठ के पूछो।
विष रस पीने का मजा कण्ठ से नीलकण्ठ के पूछो।'

बीन के तारों जैसी उसके गले की मीठी झनकार से आकृष्ट हो कर लोग अपने घरों और दूकानों से बाहर निकल आये। डुग्गी वाले ने भी वह स्वर सुना, उसे पहिचान और अपनी गाढे के दोहर के तले डुग्गी छिपा कर वह वहाँ से चलता बना।

भिक्षुक का रंगीला रूप और दुस्साहस देख कर काशी के नागरिक एक साथ ही मुग्ध और विस्मित हो गए। उसने सदा की तरह आज भी गेरुए रंग की लुंगी कमर से बाँध रखी थी और शीत ऋतु होने हुए भी उसके शरीर पर गेरुए रंग के जरी के एक दुपट्टे के सिवा और कोई वस्त्र न

था। स्नेहसिक्त भ्रमर कृष्ण कुंचित केश उसके कधो पर लहरा रहे थे और इसके साथ ही कानो के ठीक नीचे कटा चौडा पट्टा, उसके मूँछ, दाढी मुडे गोरे मुखमण्डल पर ऐसा जान पडता था जैसे सहस्त्र पूँछो और दो हाथो वाले सर्प ने किसी कनक गोलक के दोनो ओर अपना पजा जमा कर उससे चिपक अपनी सारी पूँछे पीछे लटका दी हो।

उसका सस्मित ओष्ठाधर पान के रस मे रँगा था और नशे से डगमग उसकी बडी बड़ी मदभरी आँखो मे सुरमे की गहरी बाढ थी। दोनों कानो मे एक एक रुद्राक्ष की बाली और गले मे स्फटिक का कण्ठा झूल रहा था। चौडे ललाट पर भस्म का त्रिपुण्ड दमक रहा था और त्रिपुण्ड के बीच में एक सिन्दूरी टीका था। कधे के नीचे चौडे फल का भीषण कुठार लटक रहा था। उसके पीछे सैकडो आदमियो की भीड थी।

गधियो ने दौड कर उसको इत्र मला, मालियो ने गजरे पहिनाये और सेठ साहूकारो ने रुपये पैसे की भेट दी। वह काशीवासियो की वीरवृत्ति का प्रतीक था। दाताराम नागर और भगड भिक्षुक की जोडी नगर मे राम लक्ष्मण की जोडी कहलाती थी। ६ महीने पहले दाताराम कालेपानी गया और उसी दिन से भिक्षुक भी नगर से अतर्ध्यान हो गया था। आज भिक्षुक के फिर प्रकट होने की बात जो जहाँ सुनता, वह वही से उसे देखने के लिए दौड पडता। शिवाला घाट पर बनी अग्रेजो की कब्रे भिक्षुक के पौरुष की साक्षी थी और उसी सिलसिले मे आज उसकी गिरफ्तारी के लिए डोडी पीटी जा रही थी।

घण्टे सवा घण्टे तक गाते बजाते हुए समूचा चौक घूम लेने के बाद, बाजार के मध्य में स्थित शिव मदिर के ऊँचे चबूतरे पर भिक्षुक चढ़ गया और उसने ऊँची आवाज मे कहा—"पचो, आप सब लोग डोडी सुन चुके हो। पाँच सौ कलदार कम रकम नही हैं। जिसे इनाम का हौसला हो, सामने आवे।

भिक्षुक की बातें सुन उपस्थित लोगों मे से कुछ हँस पड़े, कुछ मौन रह गए और शेष सभीत नेत्रो से कचहरी की ओर देखने लगे। चाँदनी चौक के—जिसे आजकल गुदडी बाजार कहते है—दक्षिणी दरवाजे के ठीक ऊपर उन दिनो कचहरी थी। न जनता मे से उसकी ओर कोई बढ़ा और न कचहरी से ही किसी ने झाँका। यह देख भिक्षुक के अधरों पर उस भुवन मोहन मुस्कान की रेखा खिंच गई जो यदि पुरुष के मुँह लगती है तो उसे देवता बना देती है और जब नारी के अधर पर खेलती है तब नारी कुलटा कहलाने लगती है। समवेत जनसमूह पर उसी मुस्कान की मोहनी डालते हुए उसने कहा—"अच्छा अब चलता हूँ। कोतवाली जा कर तनिक कोतवाल का भी हौसला देख लूँ।"

[दो]

पौष की संध्या सिहरने लगी थी। दालमंडी मे अमीर जान तवायफ की दिव्य हवेली के दूसरे खण्ड वाले कमरे मे तबला ठनकने लगा था। दीवारो पर टगे शीशे मे दीपाधारो में मोमबत्तियो के गुल खिल चुके थे। खिडकियो के छज्जो में फूलो के गजरे लटकाये जा चुके थे। ठेका, सारगी और मजीरे की सहायता से अमीरजान पीलू पर 'रियाज' कर रही थी—"पपीहा रे, पी की बोली न बोल।"

अमीरजान 'स्थायी' समाप्त कर 'अतरा' पर आ ही रही थी कि उसी गली में हलचल की आहट लगी। उसने देखा कि सामने की खिडकियो में वेश्याओ का समूह बाहर गला निकाले गली मे उत्सुकतावश कुछ देख रहा है। अमीरजान भी उठ कर खिड़की पर आयी। उसने देखा कि बूढे अपाहिजो और भिखारियो को रुपये पैसे लुटाता मस्त मयूर गति से गली में भंगड भिक्षुक चला जा रहा है। उसके पीछे पीछे आदमियो की बड़ी भीड है नगर की प्रसिद्ध सुन्दरी वीरांगनाये अपने अपने झरोखो पर डटी है, परतु भिक्षुक की दृष्टि चतुर्दिक चक्कर लगाने में ही व्यस्त है, उसे ऊपर

देखने का अवसर ही नही मिल रहा है। सौंदर्य का यह अपमान उसे सहन न हुआ। वह स्वय भी नगर की प्रसिद्ध वेश्या थी। उसके रूप की तूती बोलती थी। सुर ने उसे असुर की शक्ति दे रखी थी और तान ने उसे शैतान बना रखा था। इन्ही दोनो के बल वह हृदयो पर आधिपत्य जमाती थी और उनके सारे रस का शोषण कर अत में उन्हे बरबाद कर देती।

औरो की तरह उसने भी भिक्षुक को देखा, औरो ही की तरह वह भी उसके रूप पर मुग्ध हुई किन्तु यह देख कर वह औरो से कही अधिक दुखी हुई कि अशर्फियो मोलवाली, उसकी मुस्कान का मोती, भिक्षुक की नयन झोली मे न गिर कर सडक की धूल मे लोट रहा है। और औरो से बढकर उसने काम भी किया अर्थात् पश्मीने का शरबती शाल अपने शरीर से उतार उसने भिक्षुक के ऊपर डाल दिया। भिक्षुक ने शाल नीचे खीचते हुए चौक कर सिर ऊपर उठाया। अमीरजान से उसकी चार आँखें हुईं। विजय गर्व से भरी छुरी की धार जैसी तीखी मुस्कान अमीरजान के अधर पर खेल गयी किन्तु वह देर तक न बनी रह सकी। भिक्षुक ने निशाना साध कर अपने हाथ की रुपयो पैसो से भरी थैली ऊपर उछाली और वह पूरे जोर से अमीरजान की नाक के सिरे पर तडाक से जा बैठी। उसकी नाक से रक्त टपकने लगा मानो किसी लक्ष्मण ने पुन किसी शूर्पणखा का नासिका छेदन किया हो। भिक्षुक ठठा कर हँस पडा।

ठीक उसी समय बगल की मस्जिद से एक कदर्य, कुरूप और बूढी भिखारिन बाहर निकली। वह सैकडो पैबद लगा पैजामा पहने थी। उसका कुरता तार तार हो रहा था और चादर के नाम पर उसके पास एक चीथडा मात्र था। उसने भी वेश्या भिक्षुक काण्ड देखा। उसके झुर्रियो से भरे पोपले मुँह से एक विचित्र ध्वनि निकली, जिसे हँसी भी कह सकते हैं खाँसी भी। हाथ की लठिया पर शरीर का सारा भार देकर वह तन गई और अपनी गन्दी अँगुलियो से भिक्षुक का चिबुक छूती हुई बोली—"वारी

जाऊँ बेटा, शाबास। लोगों को आशंका हुई कि क्रुद्ध भिक्षुक कहीं बुढ़ी को ढकेल न दे किन्तु भिक्षुक ने दृष्टि और वाणी दोनों में कौतुक भर कर कहा—'माई तू कहाँ ! अच्छा आ ही गई तो कुछ लेती जा।' और उसने शीत से थरथर बूढ़ी की काया पर असीन्जान की शाल लाद दी। बूढ़ी बदले में दुआ तक न दे पायी थी कि भिक्षुक आगे बढ़ा।

. . .और कोतवाली आ गई।

भिक्षुक के पीछे चलने वालों की संख्या अब तक हजार के ऊपर पहुँच चुकी थी। सभी उत्सुक थे कि देखें, कोतवाली चल कर कैसी निपटती है। भिक्षुक के बल, और जीवट, शस्त्र कौशल और शास्त्र ज्ञान, कुश्ती की निपुणता और संगीत की साधना आदि का हाल बनारस का बच्चा बच्चा जानता था। साथ ही नये अंग्रेजी राज्य के कायदे कानूनों की हृदयहीन पाबंदी का स्वाद भी काशी की जनता को अल्प समय में ही मिल चुका था। उस जनता का पूरा विश्वास था कि आज अद्‌भुत विराट् और 'अवसि देखिये देखन जोगू' जैसी कोई बात होकर ही रहेगी। स्वभाव से ही तमाशबीन काशी के नागरिकों की उत्कंठा जाग गयी थी। परंतु जब कोतवाली सामने आ गई तो कोरे तमाशबीन कतराने लगे कायर छितराने लगे।

वर्तमान चौक थाने के सामने जहाँ आज सवारियाँ खड़ी होती हैं, एक कुआँ था और कुएँ के चतुर्दिक मैदान। तत्कालीन काशी में गोलगप्पे, कचालू की एकमात्र दूकान नित्य शाम, उसी कुएँ पर लगती। थाने के दक्षिण ठीक सामने सड़क की पटरी पर कोतवाली थी। भिक्षुक ने कुएँ की ऊँची जगत पर खड़े हो कोतवाली की ओर मुँह उठा कर आवाज लगायी —"हुजूर कोतवाल साहब! भिक्षुक ड्योढ़ी पर आया है। क्या हुकुम होता है।"

कोतवाल साहब मिनके तक नहीं और दो एक बरकन्दाज, जो

कोतवाली के फाटक पर थे वे भी भीतर चले गये। भिक्षुक ने भैरव विपाण के वज्रनाद के समान भयकर अट्टहास किया। एकत्र जनसमूह का कौतूहल शात हो गया था। लोगो ने मान लिया कि सरकार भिक्षुक से पराजित हो गई। उन्हे अचरज न हुआ। वे जानते थे कि सदा ही से सरकार भिक्षुको से हार मानती आई है और भविष्य मे हार मानती जायगी। भिक्षुक पर उनकी श्रद्धा और बढ गयी। भिक्षुक भी धीरे धीरे दो चार घनिष्ठ साथियो के साथ कूचा अजायब सिंह (वर्तमान कचौडी गली) पार करता हुआ अपने पचगगा घाट वाले अड्डे की ओर चला।

[तीन]

भिक्षुक का तन थकावट से चूर और मन चिता से जर्जर हो रहा था। वह गगा तट की एक मढी पर जा कर बैठ गया। उसके साथी सब्जबाग की सैर का डौल लगाने लगे। कल दोपहर से वह बराबर चल रहा था। सोने की बात ही गया, उसे बैठने तक का अवसर न मिला था, वह पूरब की ओर मुँह कर लेट रहा।

शिशिर की सध्या थी। पौष पूर्णिमा का हिमश्वेत चन्द्र नैश विहार के लिए निकल पडा था। उधर पानी से उठता हुआ कुहासा क्रमश दिगतव्यापी होने का प्रयत्न कर रहा था। प्रतीत होता था कि आकाश गगा के तट पर बैठी चन्द्रमुखी ने पार्थिव गगा के ऊपर अपना सघन केश जाल लटका दिया है। इस पार से उस पार की कोई वस्तु दिखाई न पडती थी परन्तु भिक्षुक उसी ओर देखना चाहता था।

वह देखना चाहता था उस काली चादर के पीछे छिपे कच्चे दो मंजिले एक धवल गृह को और वह देखना चाहता था उस धवल गृह मे आलोक शिखा सी स्थित धवल सौंदर्य की स्वामिनि मगलागौरी को। मगलागौरी ने कल उसे बाल-बाल बचा लिया था। उसने उसे देखते ही पहचान लिया था, परतु भिक्षुक ने उसे तब पहिचाना जब उसने अपनी आम की फाँक

जैसी आँखो से अश्रुरस उलीचते हुए गद्‌गद् कण्ठ से पूछा था—'क्या गौरी की तपस्या अब भी पूरी नही हुई।' और तब वह उसे पहिचान कर पुन दूसरी रात आने का वचन दे बैठा। तभी से उसके मन मे एक ही प्रश्न चक्कर काट रहा था कि क्या त्यागी हुई वस्तु पुनः ग्रहण की जा सकती है!

मगला गौरी उसकी पत्नी थी। परन्तु उसने उसका मुख जीवन में दो ही बार देखा था। एक विवाह की रात और दूसरे तेरह वर्ष बाद पिछली रात। भिक्षुक ने अलवर के एक ऐसे चारण कुल मे जन्म लिया था जिसकी जीविका का साधन कडरवा-पाठ न हो कर असि संचालन था। उसे जन्म से ही व्यायाम और शस्त्र सचालन की शिक्षा मिली थी। तेरह वर्ष की वय मे उसका विवाह जैसलमेर मे हुआ। श्वसुर राजस्थान के प्रसिद्ध चारण थे। कितने ही राजाओ ने 'लाख पासव'* और 'कोड पसाव'* से उनका सम्मान किया था। उत्तर वयस मे उन्होने नाथ द्वारा जा कर कण्ठी बँधवा ली थी। उसके बाद ही कन्या के रूप मे उनके घर मे प्रथम सतान ने जन्म लिया। कन्या पिता के आँखो की पुतली हो गयी। अन-जाने ही पुत्री पर भी पिता का रंग चढने लगा। पिता पूजा करते और पुत्री गोविन्द लाल की प्रतिमा के समक्ष नाचती हुई तोतली बोली से गाती—"मै तो गिरिधर आगे नाचूँ री।"

भिक्षुक को विवाह की रात की वह घटना याद आयी जब सातपदी समाप्त होने पर ससुराल की स्त्रियो ने उसको कविता और दोहा सुनाने के लिए कहा और वह मौन रह गया था। कारण तब तक उसे अपना

---

* राजस्थानी नरेशो के यहाँ प्रथा थी कि वे किसी कवि या चारण का सम्मान करने के लिए हाथी, घोडा, भूमि हथियार, रत्न आदि मिला कर उसे ३०-४० हजार रुपये की रकम दिया करते थे। उसे ही लाख पसाव और कोड़ पसाव कहते थे—मिलाइये—लक्षप्रसाद कोटि प्रसाद।

नाम चंद्रचूड को चरनचूर बताने का अभ्यास था। उसके चुप रह जाने पर महिलाओ का मर्म स्वर उसके कानो मे धनुषटकार की भाँति गूँज उठा 'मर्ख है।' चतुर चतुरानन की चातुरी वहाँ भी चल गयी। नैश जागरण से नीद मे माती, भागवत के सैकड़ो श्लोक कण्ठस्थ रखने वाली मगला के भी मुख से प्रतिध्वनि की तरह निकल पड़ा—"मूर्ख है।"

वह अपढ था पर अज्ञानी नही। और मूर्ख यदि बलवान हुआ तो फिर उसके स्वाभिमान की सीमा नही रह जाती। वह उठ खडा हुआ और महिला मण्डल को ढकेलता बाहर निकल आया। रात की अँधेरी मे अपने को छिपाता वह जगल मे भागा और मरुभूमि मे महीनो का मार्ग पार कर वह काशी आ पहुँचा। यहाँ उसने विद्या पढी। विद्वान भी हुआ पर फिर लौट कर घर नही गया।

भिक्षुक की विचारधारा मे बाधा पड़ी। उसके एक साथी ने आकर कहा—'गुरू तैयार हो गई।'

"बडा जाडा है, आज तो पचरत्ती छानूँगा। भिक्षुक ने कहा।

'अच्छा तो अभी तैयार हुई जाती है।' साथी ने कहा।

नागवच्छ और धतूरे के बीज के साथ सिल पर सखिया की दो लकीर खीच भिक्षुक के हिस्से की भांग पुनः पीसी गयी। गोला तैयार होने पर उसके पेटे में थोडी अफीम रख दी गयी और चुल्लू भर जल के सहारे भिक्षुक ने वह गोला अपने उदर मे उतार लिया। आकाश को अपनी तान से गुंजाते हुए वह उठ खडा हुआ। गगा की लहरो ने प्रतिध्वनि की—

'विष रस पीने का मजा कण्ठ से नील कण्ठ के पूछो।'

[चार]

दस बजे रात गगा मे ११ डुबकियाँ लगा कर जब भिक्षुक बाहर निकला तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि शीत के प्रहार से उसका नशा उखड़ गया है। उसके सगी साथी विदा हो गये थे। उसने बदन पोछते हुए घाट

के किनारे स्थित अपनी मढी नुमा खोह मे प्रवेश किया। दीवट पर मृत्युदीप जल रहा था और भूमि पर बाघम्बर पड़ा था। उसी पर बैठ गाजे की दम लगाते हुए वह विचार करने लगा।

अभी तक वह इस प्रश्न की मीमासा न कर पाया था कि जिसका त्याग कर दिया उसका पुनर्ग्रहण उचित है या नही। विधि और निषेध दोनो पहलू उसके सामने आते थे। त्यागी हुयी वस्तु उच्छिष्ट है। मानो उसे ग्रहण नही करते। नारी साधना पथ का अन्तराय है, मै साधक हूँ।

पुन दूसरे ही क्षण वह सोचता—'गौरी मेरी सहधर्मिणी है। वह जैसी सुन्दरी है वैसी बुद्धिमती भी। उससे मुझे कर्तव्य पालन मे सहायता ही मिलेगी। उसका मैने प्राणिग्रहण किया है। मै उसे वचन दे आया हूँ। वह मेरी प्रतीक्षा करती होगी।' प्रश्न के इस सामाजिक पहलू ने निर्णय कर दिया। वह अभिभूत सा धीरे-धीरे खोह के बाहर निकला। एक नाव खोली। उस पर बैठ उसने उसे धारा मे छोड दिया और स्वय भी विचारधारा में बह चला। उसके हाथ यन्त्रवत नाव खे रहे थे। वह सोच रहा था कि यदि वह न होती तो सिपाही मुझे अवश्य पकड लेते। मै खाली हाथ थका माँदा और पैदल था, वे हथियारबद, घोडे पर सवार थे। न जाने कैसे पहचान लिया दुष्टो ने। अलीनगर से क सर तक दौडा मारा। पर उन्हें भी पता चल गया होगा कि आज किसी से पाला पडा है। सब तो पीछे रह गये, परन्तु यह ससुरा हवलदार, उसने अत तक पीछा न छोटा।

नाव किनारे लग गयी। भिक्षुक उस पर से उतरा। रेती मे खूँटा गाड़ कर उसने नाव उसी मे बाँध दी और स्वय गाँव की ओर चला। फीकी चाँदनी मे शृगाल चद्रमा की ओर मुँह उठा उठा चीत्कार कर रहे थे। गाँव में पहुँचते ही कुत्ते उसके पीछे पीछे भूकते चले। मंगला गौरी के ओसारे के सामने पहुँच भिक्षुक ने देखा कि ओसारे में काठ की चौकी पर बैठा वही हवल्दार मूँछो पर हाथ फेरता हुआ वड़े ऊँचे स्वर से रामायण की चौपाइयाँ

उडा रहा है—

'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, कहुँ देखी सीता मृग नैनी।
तुम आनन्द करहु मृग जाये, ये कञ्चन मृग हेरन आये।'

भिक्षुक सामने नाँद के पीछे, जहाँ वह पिछली शाम छिपा था, जाकर खडा हो गया। कल शाम वह, यही बैल बाँधने के खूँटे से ठोकर खा-कर तृषातुर गिर पडा था। गौरी वही खडी नाँद मे बैलो के लिए सानी दे रही थी। उसके गिरते ही वह पास आयी थी। उसे देखते ही वह चौकी थी और बगल से आती घोडे की टाप की आवाज सुन कर नाँद की ओर अँगुली उठा कर उसने भ गले से कहा था—'वहाँ नाँद के पीछे।' और वह कठिनाई से नाँद के पीछे छिप पाया था कि घोडे पर चढा यही हवलदार आया। उसने पूछा था—'गौरी, इधर से कोई आदमी अभी भागा है।' और गौरी ने क्षण भर का भी विलम्ब किये विना उत्तर दिया था—'नही, तो, मैं आज दरवाजे पर दो घण्टे से हूँ। इस पर हलवदार ने कहा था कि, 'अच्छा थोडा पानी पिला।'

यह वात याद आते ही भिक्षुक ने देखा कि सामने का दरवाजा खुला और गौरी अपने हाथ मे दूध भरा कटोरा लिए निकली। उसने हवलदार से कुछ कहा। हवलदार ने मुस्कुरा कर कटोरा उसके हाथ से ले अपना मुँह लगाया। भिक्षुक के पीठ पर जैसे कोडा पडा। वह वहाँ से सरपट भागता हुआ गगा तट पर आया, नाव खोल कर उस पर बैठ गया और उसे खेते हुए मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा—'ओह, मैं पढ लिख कर भी मूर्ख ही रहा। मै अपनी कामुकता को कर्तव्य का चोला पहिना रहा था। रूप के क्षणिक आकर्पण मे मैं अपनी आजन्म साधना नष्ट करने जा रहा था। मैंने एक वार भी यह न सोचा कि 'जैसलमेर की यह गोरेडी' यहाँ कैसे चली आयी और फिर यहाँ वह एक पुरुष के साथ रहती है। उससे मुस्करा कर वात करती है, उसे कटोरा भर भर दूध पिलाती है।'

भिक्षक के हाथो मे डाँड़ा और विचार में उधेडबुन चल रहा था। तरी के पुष्ट वायु की तरावट से जब उसका मस्तिष्क कुछ ठंडा हुआ तो विचारो की धारा भी दूसरी ओर घूमी। आत्म निन्दा के भाव ने विपरीत दिशा मे ज़ोर बाँधा। भाव सबलता के कारण उसके ओठ हिल उठे और मन के विचार बडबडाहट के रूप मे निकल पडे—

बिना समझे बूझे निर्णय यही कहलाता है केवल अनुमान के आधार पर मैं यत्परो नास्ति चिंता में पडा हूँ। हो सकता है हवलदार उसका कोई निकट सम्बन्धी हो। उससे मिल कर पूछ लेने मे ही क्या बुराई थी पर बात यह है कि सब साध्य साधना करने पर भी मेरा मन साधारण जन की ही तरह अब भी ईर्ष्या द्वेष ग्रस्त है। विवाह की रात की तरह ही अब भी मेरे षड् रिपु जाग रहे हैं, अन्यथा मेरे नाम से डौंडी पिट रही है, यह सुन कर मुझे नगर मे निकल पडने और दिन भर घूमते रहने की क्या जरूरत थी। मेरे साथ बड़ी भीड़ थी, इसी से मेरे सामने आने की किसी ने हिम्मत न की। नही तो पकड जाने पर जो कुछ होगा वह मुझसे छिपा नही है। नागर कालापानी गया, मैं फांसी जाऊँगा। अपनी उजलत के कारण मैं गौरी के प्रति दूसरी बार अन्याय करने जा रहा था।

और, आधी गगा पार कर लेने पर भी उसने अपनी नाव पुनः कटेसर वाले तट की ओर घुमा दी। नाव घूमते ही उसने चकित होकर देखा कि उससे थोडी ही दूर पर राजघाट की ओर से २०-२५ नावों पर सवार गोरे सैनिक, उसी की नाव की ओर बढे आ रहे हैं। उसने जल्दी से नाव घुमाई और सैनिको को अपनी ओर बदूक छतियाते देखा। गोलियाँ छूटने के पहले ही वह पानी मे कूद पडा। यथासम्भव अधिकाधिक डुबकी लगाता हुआ वह किनारे पर पहुँचा और हँकव में फंसाये सिह के समान तीर की तरह वह अपनी गुफा में घुस गया। सैनिक भी नावो से उतर खोह के दरवाजे पर खडे हो गये।

[पाँच]

सकडो कठो से उठी उल्लासध्वनि गंगा की लहरो पर लुढकती, रेती पर दौडती और चने के खेतो पर से उडती जब यदुनाथ हवलदार के दो मजिले मकान मे घुस कर भूमि पर सोयी मंगला गौरी के कर्ण पुटो से जा टकरायी तो उसकी आँखे खुल गयी। उसने ध्वनि का अनुसरण करते हुए पश्चिमी दीवाल मे बने हुए गवाक्ष से बाहर झाँका। घनश्याम तरुराज के अतराल से उसने देखा कि श्यामल शस्य-क्षेत्रो और बालू-भरी भूमि के बाद गगा पर क्रमश ऊपर उठती धूम्र राशि माधवराज के धरहरे के कगूरे पर विराट अजगर सी कुण्डली बाध रही है।

आज गौरी ने रात आँखो मे काटी थी। नित्य भूमि पर शयन का नियम रखते हुए भी उसने आज शय्या बिछाई थी और उस पर सूचिकार्य खचित आस्तरण भी डाल रखा था। पर जिसे उस शय्या पर शयन करना था वह आया ही नही। सारी रात प्रतीक्षा करने के बाद जब भोर मे दक्खिनी वायु चली तो उसकी पलकें झप गईं। और अब उठने पर देख रही है कि उसके नयन और मन मे ही नही, गगा पर भी आग लगी है। सहसा किसी ने दरवाजा खटखटाया। गौरी के किवाड खोलते ही एक पडोसी की चंचल और हँसोड पुत्री गेदा तूफान की तरह कोठरी मे घुसी और गौरी के गले मे हाथ डाल फूलो के हार सी झूलती हुई उसने कहा—'जीजी कब से तुम्हे बुला रही हूँ। चिल्लाते चिल्लाते गला बैठ गया। तुम क्या कर रही थी।'

'सवेरे-सवेरे मुझसे तेरा कौन सा काम अटक रहा था, गेदा!'—गौरी ने उससे अपना गला छुडाते और मुस्कराते हुए कहा। तेरह वर्ष की अल्हड छोकडी गेदा को गौरी से कोई काम न था। वह केवल उसे यह समाचार देने आई थी कि उस पार नगर मे आग लगी है ऐसा उसने कहा—'काम तो कुछ नही था, जीजी! उस पार आग लगी है। गाँव भर देखने गया है। मैं भी किनारे तक गयी थी'।

'अच्छा !—गौरी ने विस्मय का अभिनय करते हुए कहा ।

'अच्छा क्या ? सोचा था तुम्हे भी साथ लेती चलूँ । खिड़की के नीचे खड़ी होकर कितनी चिल्लायी । रोज तो तुम चार बजे भोर से ही उठकर क्या क्या गाया करती थीं । आज तुम्हारी आहट ही नही मिली । हाँ, वह गीत तो गावो, जीजी ! म्हाने चाकर राखो जी, गिरधारी लाला !' गेंदा ने कहा और वह खिलखिलाकर हँसी फिर तत्काल सयत होकर बोली—'अच्छा जीजी, ये सब गीत तुमने सीखे कहाँ ?'

अल्हड गेंदा प्रश्न पर प्रश्न करती जा रही थी, विना यह खयाल किये, कि उसके प्रश्न गौरी के हृदय पर हथौडे की चोट कर रहे है । फिर गौरी ने कहा—'इसमे बताने की क्या बात है ? मेरे बाप श्री गोविंदलाल के उपासक थे न । उन्ही से यह सब सीखा है । उनके गोलोक धाम जाने पर जब दायादो ने मेरी सब सम्पत्ति छीन ली तो मैं अपने मामा के पास चली आयी । मामा ने जब काशी राज की सेना मे नौकरी की तो मै भी यहाँ चली आयी ।

'अच्छा एक गीत गाओ जीजी ! मझे बडा अच्छा लगता है'—गेंदा ने कहा ।

'इस समय चित्त ठिकाने नही है, गेंदा ! फिर कभी गाऊँगी ।

'नही, मेरी अच्छी जीजी ! दो ही एक कड़ी सुना दो'—गेंदा ने बच्चो की तरह मचलते हुए कहा । अत मे गौरी को गेंदा के हठ के सामने झुकना पड़ा, उसने शून्य शय्या की ओर देख गुनगुनाना आरम्भ किया—

एरी मैं तो दरद-दिवाणी,
मेरो दरद न जाने कोय ।
सूली ऊपर सेज पिया की,
केहि विधि मिलना होय ।

'किससे केहि विधि मिलना होय' जीजी ! उससे तो नही, जो परसों साँझ को नाँद के पीछे छिपा था ? —फिर खिलाखिला कर गेदा ने पूछा।

'आ पर कलमुँही !' गौरी ने कहा और साथ ही सुना कि उसके मामा नीचे खड़े पुकार रहे हैं—गौरी, गौरी ! अभी तक नीचे नही उतरी, वात क्या है।'

सीढी पर मामा के चढने की आहट मिली। वह कही कोठरी मे न आ जाँय इसलिये गेदा के साथ वह स्वय बाहर निकल आयी और सामने होते ही पूछ वैठी—'क्या है, मामा' ?

'अपना अभाग है विटिया ! कमवख्त आज कुत्ते की मौत मारा गया। कही परसो ही गिरफ्तार हो गया होता तो पाँच सौ कलदार मेरे हाथ लगगता'। यदुनाथ हवलदार ने कहा।

सुनते ही गौरी को जैसे काठ मार गया। और उसके चेहरे पर हवाई उडने लगी। उसने कठोर सयम से काम लिया और उसके मुँह से आह तक न निकली। गेदा ने यदुनाथ से पूछा—'कौन, कुत्ते की मौत मारा गया काका !'

'अरे, वही नागर गुडे का साथी भगड भिक्षुक ! लेकिन बिटिया, वह रहा वडा बहादुर ! जिस गोरे ने उसकी खोह मे घुसने के लिये सिर डाला उसका सिर भीतर ही रह गया ! पाँच सात गोरो के कटते ही सेना ने लकडियो से खोह को तोप कर उसमे आग लगा दी। देख न कितनी लपटे उड रही है।'

गौरी और गेदा दोनो पश्चिम की ओर अग्नि ताडव देखने लगी। गौरी ने देखा की अशरीरी आतमा की लोल लोलिहान अँगुलियो के समान लपलपाती लपटे आकाश छूने के लिये उचक रही है। उनके ऊपर उडती हुई धुएँ की रेखा ने सूली का आकार धारण कर रखा है और उसी सूली की नोक पर वैठा हुआ भिक्षुक क्रमश ऊपर उठता जा रहा है। उसने कुछ सोचा और गेदा से कहा—'तू नीचे चल ! मै अभी दरवाजा वन्द

-कर आयी।'

गेंदा नीचे उतर गयी। गौरी फिर कोठरी में घुसी। उसने भीतर से द्वार बन्द कर दिया। कोने में रखा निष्प्रभ दीप अब भी मंद मंद जल रहा था। उसने दीपक उठाया और उसकी लौ शय्या पर बिछे बिछौने से लगा दी। क्षण भर में ही शय्या जलने लगी। वही दीपक अपने आँचल के तले रख, उसने बारह वर्ष बाद शय्या पर पैर रखा। आंचल को भी आग पकड चुकी थी। पल भर में ही गेंदा और यदुनाथ को भी ज्ञात हो गया कि गौरी की कोठरी में आग लगी है। गेंदा दौड कर सीढी पर चढी और दरवाजा पीटते हुए चिल्लाई—'जीजी, जीजी, यह क्या?'

भीतर से चण्डी के अट्टहास की तरह गौरी का शब्द सुनाई पडा—'गेंदा, सूली ऊपर सेज पिया की, एहि विधि मिलना होय।' और फिर काठ-कवाड तथा जलते मास की दुर्गंध बाहर निकलने लगी।

उसने कहा था

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

[१]

बडे-बडे शहरो के इक्के-गाडी वालो की जवान के कोडो से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये है उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बू कार्ट वालो की वोली का मरहम लगावे । जब बडे-बडे शहरो की चौडी सडको पर घोडे की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोडो की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते है, कभी राह चलते पैदलो की आखो के न होने पर तरस खाते है, कभी उनके पैरो की अँगुलियो के पोरो को चीथकर अपने ही को सताया हुआ वताते है, और ससार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार वने नाक की सीध चले जाते है, तब अमृतसर मे उनके बिरादरी वाले तग चक्करदार गलियो मे हर एक लड्ढी वाले के लिये ठहर कर सब्र का समुद्र उमडा कर "बचो खालसाजी", "हटो भाई जी", "ठहरना भाई", "आने दो लाला जी", "हटो बाछा", कहते हुए सफेद फेटो' , खच्चरो और बतको, गन्ने और खोमचे और भोर वालो के जगल मे राह खेते है । क्या मजाल कि जी और साहब विना सुने ही किसी को हटना पडे । यह बात नही कि उनकी जीभ चलती ही नही, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार मारती हुई । यदि कोई वुढिया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नही हटती तो उनकी बचनावली के ये नमूने है—हट जा जीणे जोगिये, हट जा करमा वालिए, हट जा पुत्ता प्यारिये, बच जा लबी वालिए । समष्टि मे इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यो वाली है, पुत्रो को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्या मेरे पहियो के नीचे आना चाहती है ? बच जा ।

ऐसे बम्बू कार्ट वालो के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालो और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनो सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिये दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेसी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापडो की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ है ?"

"मगरे में—और तेरे ?"

"माझे में"—"यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतर सिंह के बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं ?"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार मे है।"

इतने मे दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकरा-कर पूछा—"तेरी 'कुड़माई' हो गई ?" इस पर लड़की कुछ आँखे चढाकर —'धत्' कह कर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रहा गया।

दूसरे, तीसरे दिन सब्जी वाले के यहाँ, दूध वाले के यहाँ, अकस्मात दोनो मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा, दो तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई ?" और उसके जवाब में वही "धत्" मिला। एक दिन जब लड़के ने वैसी ही हँसी मे चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की लड़के की सभावना के विरुद्ध बोली—"हाँ हो गई।"

"कब ।"

"कल, देखते नही यह रेशम से कढ़ा हुआ 'सालू'। लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले से दूध उड़ेल दिया सामने नहा कर आती हुई

किसी वैष्णवी से टकरा कर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

[२]

"राम-राम यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दसगुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखाता नहीं घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से कोई बचे तो लड़े। नगर-कोट का जलजला सुना था। यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो वह चटाक से गोली खाती है। न मालुम बेईमान मिट्टी में लपटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जायेगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में मखमल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।"

"चार दिन तक आँख नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुकम मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े, संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था। चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमांड दिया, नहीं तो—"

"नही तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यो ?" सूबेदार हजारासिंह ने मुसकरा कर कहा, "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नही चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते है। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ गए तो क्या होगा।"

"सूबेदार जी, सच है," लहना सिंह बोला, "पर करे क्या ? हड्डियो-हड्डियो मे जो जाडा धँस गया है। सूर्य निकलता नही और खाई मे दोनों तरफ से चम्बे की बावलियो के-से सोते झर रहे है। एक धावा हो जाय तो गर्मी आ जाय।"

"उदमी, उठ सिगड़ी मे कोले डाल। वज़ीरा तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेको। महासिंह शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल देना।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी मे गँदला पानी भर कर खॉई के बाहर फेकता हुआ बोला—"मै पाधा बन गया हूँ, करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।" इस पर सब खिल खिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ मे देकर कहा—"अपनी बाडी के खरबूजो मे पानी दो ! ऐसा खाद का पानी पजाब भर मे नही मिलेगा।"

"हाँ देश क्या है ? स्वर्ग है, मै तो लडाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलो के बूटे यहाँ लगाऊँगा।"

"लाडी होरा को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरगी मेम।"

"चुप कर। यहाँ वालो को शरम नही।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मै उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नही पीते। वह सिगरेट देने मे हट करती है, ओठो मे लगाना चाहती है और मै पीछे हटता हूँ तो समझती है राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लडेगा नही।"

"अच्छा अब बोधसिंह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"जैसे मै जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनो कम्बल उसे उढाते हो और आप सिगडी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकडी के तख्तो पर उसे सुलाते हो, आप कीचड मे पड़े रहते हो। कही तुम न माँदे पड़ जाना। जाडा क्या है मौत है और निमोनिया से मरने वालो को मुरब्बे नही मिला करते।"

"मेरा डर मत करो मै तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरत सिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड की छाया होगी।"

वजीरा सिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने-मारने की बात लगाई है। मरे जर्मनी और तुर्क ! हाँ भाइयो कैसे—"

दिल्ली शहर ते पिशौर नुजादिए,
कर लेना लौगो दा वचार पड़िए।
कर लेना नोडदा सौदा अडिए।
क्षेय ! लापा चटाकर कडुए नूं।
कड वचाया वे मजेदार गोरिए।
हुआ लाजा बटका कडुए न न।

कौन जानता था कि दाढी वाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चो का सा गीत गायेगे, पर सारी खदक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हो।

[३]

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधसिंह खाली बिसकुटो के तीन टीनो पर अपने दोनो कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरान कोट ओढकर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खडा हुआ है। एक आँख खाँई के मुख पर है और एक बोधसिंह के दुर्बल शरीर पर। बोधसिंह कराहा।

"क्यों बोधसिंह भाई, क्या है ?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगा कर पूछा—"कहो कैसे हो ?" पानी पीकर बोधा बोला—"कपनी छूट रही है। रोम-रोम मे तार दौड रहे है। दाँत बज रहे है।"

"अच्छा मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम।"

"मेरे पास सिगडी है, और मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।"

"ना मैं नही पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए—"

"मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमे बुन बुनकर भेज रही है। गुरु उनका भला करे।" यो कहकर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो।"

"और नही झूठ ?" यो कहकर नाही कहते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन कर पहरे पर खडा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने मे खाई के मुँह से आवाज आई—"सूबेदार हजारासिंह।"

उसने कहा था

"कौन ? लपटन साहब ? हुकुम हुजूर" कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमे पचास से ज्यादह जर्मन नही है। इन पेडो के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हें। जहाँ मोड है वहाँ पन्द्रह जवान खडे कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खदक छीन कर वही, जब तक दूसरा हुकुम न मिले, डटे रहो, हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुकुम।"

चुप-चाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिह ने उसे रोका। लहनासिह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बडी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगडी के पास मुँह फेर कर खडे हो गये और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होने लहना की ओर हाथ बढाकर कहा—

"लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—"लाओ, साहब" हाथ आगे करते ही उसने सिगडी के उजाले मे साहब का मुँह देखा, बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियो वाले बाल एक दिन मे कहाँ उड गये और उसकी जगह कैदियो के से कटे बाल कहाँ से आए।

शायद साहब शराब पिये हुए है और उन्हे बाल कटाने का मौका मिल गया है। लहनासिह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसके रेजिमेट मे थे।

"क्यो साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे ।"

"लडाई खत्म होने पर । क्यो, क्या यह देश पसद नही ?"

"नही साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले मे शिकार करने गये थे"— "हॉ, हॉ"—"वही आप जब खौते पर सवार थे और आप का खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मदिर मे जल चढाने को रह गया था।" "बेशक पाजी कही का "— सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बडी मैंने कभी न देखी थी। और आप की एक गोली कधे मे लगी और पुट्ठे मे निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने मे मजा है। क्यो साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजीमेट की मेस मे लगायेंगे।" "हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया"—"ऐसे बड़े-बडे सींग ! दो-दो फुट के तो होगे।"

"हॉ लहनासिह, दो फूट चार इच के थे। तुमने सिगरेट नही पिया ?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ"—कहकर लहनासिह खदक मे घुसा। अब उसे सदेह नही रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए ?

अँधेरे मे किसी सोने वाले से वह ... टकराया।

"कौन वजीरासिह ?"

"हाँ, क्यो लहना ? क्या कयामत आ गई ? जरा ऑख लगने दी होती।"

[४]

"होश मे आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गए है या कैद हो गए है। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नही देखा, मैंने

देखा है, और बाते की ह, सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।

"तो अब ?"

"अब मारे गए। धोखा है। सबेदार होरा कीचड मे चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले मे धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरो के निशान देखते देखते दौड जावो। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एक दम लौट आवे। खदक की बात झूठ है। चले जाओ, खदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक खड़के। देर मत करो।"

"हुक्म तो यह है कि यही।"

"ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिह जो इस वक्त यहाँ सबसे बडा अफसर है उसका हुकुम है। मै लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिह दीवार से चिपट गया। उसने देखा लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनो को जगह-जगह खदक की दीवारो मे घुसेड दिया और तीनो मे एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगडी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखे—

बिजली की तरह दोनो हाथो से उलटी बदूक को उठा कर लहनासिह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन

पर दे मारा और साहब "आह ! मीन गौट" कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीनो गोले बीन कर खदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया और जेबो की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हे अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला, "क्यो लपटन साहब ! मिजाज़ कैसा है। आज मैने वहुत बाते सीखी। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते है। यह सीखा कि जगाधारी के जिले मे नील गायें होती है और उनके दो फुट चार इंच के सीग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियो पर जल चढाते हैं। और लपटन साहब खोते पर चढते है। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना डैम के पाँच लफ्ज भी नही बोल सकते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जोड से बचाने के लिए दोनो हाथ जेब मे डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो वडे हो पर माझे का लहना इतने वरस लपटन साहब के साथ रहा है उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव मे आया था। औरतों के बच्चे होने की तावीज बाँटता था और बच्चो को दवाई बाँटता था। चौधरी के वड के नीचे मजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहा करता था कि जर्मनी वाले बडे पडित है वेद पढ़कर उसमे से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नही मारते। हिन्दुस्तान मे आ जायेगे तो गो हत्या बन्द कर देगे। मडी के बनियो को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक बाबू फेल्हू राम भी डर गया था। मैने मुल्लाजी की दाढी मूड दी थी। और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव मे अब पैर रखा तो—"

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघो मे गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरो ने साहब की "कपाल-क्रिया" कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया, "क्या है?"

लहना सिंह ने उसे तो यह कर सुला दिया कि एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया और, औरो से सब हाल कह दिया। सब बन्दूके लेकर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनो तरफ पट्टियाँ कस कर बाँधी। घाव माँस मे ही था। पट्टियो के कसने मे लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने मे सत्तर जर्मन चिल्ला कर खाई मे घुस पड़े। सिक्खो के बदूको की बाढ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ आठ (लहना सिंह तक तक कर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर? अपने मुर्दा भाइयो के शरीर पर चढ कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटो मे वे—अचानक आवाज आई 'वाह गुरु जी की फतह! वाह गुरु जी का खालसा!!' और धड़ाधड़ बन्दूको के फायर जर्मनो के पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटो के बीच मे आ गए। पीछे से सूबेदार हजारा सिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहना सिंह के साथियो के सगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालो ने भी सगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खाँ दी फौज आई! वाह गुरु जी दी फतह! वाह गुरु जी दा खालसा! सत श्री अकाल पुरुष!" और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जरमन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खो मे पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली मे एक गोली लगी। उसने घाव को खदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कस कर कमर

बन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहनासिंह के दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिस के प्रकाश से संस्कृत-कवियो का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी की बाण भट्ट की भाषा मे 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि जैसे मन-मन भर फ्रान्स की भूमि मेरे बूटो से चिपक रही थी जब मैं दौडा-दौड़ा सुबेदार के पीछे गया था। सुबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन, और कागजात पाकर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालो ने सुन ली थी। उन्होने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झट-पट दो बीमार ढोने की गाडियाँ चली, जो कोई डेढ घंटे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाँयँगे। इस लिये मामूली पट्टी बाँध कर एक गाडी मे घायल लिटाये गये और दूसरी मे लाशे रक्खी गईं। सूबेदार ने लहना सिंह की जाँघ मे पट्टी बधँवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोडा घाव है सबेरे देखा जायगा। बोधसिंह ज्वर मे बर्रा रहा था। वह गाडी मे लिटाया गया। लहना को छोडकर सूबेदार जाते नही थे। यह देख लहना ने कहा—

"तुम्हे बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगध है। जो इस गाडी मे न चले जाओ।"

"और, तुम?"

"मेरे लिये वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुर्दों के लिये भी तो गाडियाँ आती होगी। मेरा हाल बुरा नही है। देखते नही मैं खडा हूँ वजीरासिंह मेरे पास ही है।"

"अच्छा, पर"

"वोधा गाडी पर लेट गया। भला, आप भी चढ जाओ। सुनिये तो, सूवेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझ से जो उन्होने कहा था मैने कर दिया।"

गाडियाँ चल पडी थी। सूबेदार ने चढते-चढते लहना का हाथ पकड कर कहा, "तैने मेरे और वोधा के प्राण बचाये है लिखना कैसा! साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूवेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था"

"अब आप गाडी के ऊपर चढ़ जाओ। मैने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना।" गाडी के जाते ही लहना लेट गया। "वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमर-बन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

[५]

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्मभर की घटनाये एक-एक कर के सामने आती है। सारे दृश्यो के रग साफ हो जाते है, समय की धुध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

* * *

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्जी वाले के यहाँ, हर कही उसे एक आठ वर्ष की लडकी मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुडमाई हो गई। तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा "हाँ, कल हो गई, देखते नही यह रेशम के फूलो वाला सालू ?" सुनते ही लहनासिंह को दुख हुआ, क्रोध हुआ। क्यो हुआ ?

वजीरा सिंह, पानी पिला दे।"

* * *

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह न० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी

मिली थी, या नही। सात दिन की छुट्टी ले कर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिह की चिट्ठी मिली कि मैं और वोधासिह भी लाम पर जाते है। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेगे। सूबेदार का गाँव रास्ते मे पडता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहना सिंह सबेदार के यहाँ पहुँचा। जब चलने लगे, तव सूबेदार बेडे मे से निकल आया। बोला—"लहना सूबेदारनी तुमको जानती है, बुलाती है, जा मिल आ। लहनासिह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती है? कब से? रेजिमेट के क्वारटरो मे तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नही। दरवाजे पर जा कर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिह चुप।

"मुझे पहचाना?"

"नही।"

"तेरी कुड़माई हो गई? धत्—कल हो गई—देखते नही रेशमी वूटो वाला सालू—अमृतसर मे—"

भावो की टकराहट से मुर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला" उसने कहा था।

* * *

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है लायलपुर मे जमीन दी है आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियो की एक घँघरिया पल्टन क्यो न बना दी जो मै भी सूबेदार जी के साथ चली जाती। एक बेटा है फौज मे भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर

एक भी नही जिये।" सूबेदारनी रोने लगी—"अब दोनो जाते है। मेरे भाग। तुम्हे याद है एक दिन टॉगे वाले का घोडा दही वाले की दूकान के पास बिगड गया था तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोडे की लातो मे चले गए थे और मुझे उठा कर दुकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनो को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मै आँचल पसारती हूँ।"

रोती रोती सूबेदारनी ओवरी मे चली गई। लहना भी आँसू पोछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिह, पानी पिला" उसने कहा था।

लहना का सिर अपनी गोदी मे रक्खे वजीरासिह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

"कौन। कीरति सिह?"

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा—"हाँ"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्टे पर मेरा सिर रख ले।

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ" अब ठीक है पानी पिला दे। बस अब के हाडे मे यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनो यही बैठ कर आम खाना जितना बडा मेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने मे उसका जन्म हुआ था उसी महीने मे मैने उसे लगाया था।

वजीरा सिह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगो ने अखबारो में पढा—फ्रांस और बेलजियम—६८ वी सूची—मैदान मे धावो से मरा—न० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिह।

क्रय-विक्रय का आदर्श

श्री दयाशंकर दुबे

"देखो मोहन, वह वृद्ध आदमी जो धीरे-धीरे टहलता हुआ जा रहा है, जानते हो, कौन है ?"

चाचा ने मोहन से पूछा।

मोहन ने जवाब दिया—मैं तो नही जानता चाचा। पर क्या ये महाशय कोई ऐसी विशेषता रखते हैं, जिसके जानने की मुझे आवश्यकता ही हो ?

चाचा—ये हमारे नगर के गौरव हैं। कलकत्ता और बम्बई जैसे नगरों में इनकी बडी-बडी दुकानें है।

मोहन—इससे क्या ? दूकानें तो ऐसे सैकडो आदमियों की हो सकती है। लक्ष्मी ऐसी वस्तु है कि जिसके पास होती है, उसमें गुण-ही-गुण देख पड़ते है। सारे अवगुण उसके छिप जाते है। कोई ऐसी बात बताइये, जिससे इनकी महानता पर प्रकाश पडे।

चाचा—तो फिर सुनो। अब इनकी अवस्था सत्तर वर्ष से ऊपर है। लेकिन जब ये चौदह वर्ष के थे, तो मंगलपुर से कानपुर भाग आये थे। कहते हैं, उस समय इनके पास फूटी कौड़ी भी न थी। साथ में केवल एक लोटा-डोर था। ओढने और बिछाने तक के लिए इनके पास कपड़े न थे।

मोहन ने आश्चर्य से कहा—अच्छा !

चाचा—हाँ, तभी तो मैंने पहले ही कहा था, ये हमारे नगर के गौरव है।

मोहन—किन्तु यह तो केवल आर्थिक दृष्टि से उन्नति करने की बात हुई।

चाचा—पर आर्थिक दृष्टि से उन्नति करना कोई मामूली वात नही है। जो व्यक्ति अपनी ईमानदारी, मेहनत और असाधारण प्रतिभा की बदौलत इतनी उन्नति कर सकता है, अवश्य ही वह हमारी प्रशसा का पात्र है।

मोहन—अच्छा तो वतलाइये। मैं अव वीच मे नही बोलूँगा।

चाचा—सबसे पहले इन्होने एक हलवाई की दूकान पर कढाई आदि वर्तन मलने का काम किया। दिन भर सबेरे से लेकर रात के ग्यारह बजे तक ये उस दूकान पर काम करते थे और रात को जब दूकान वन्द हो जाती, तो उसी पर सो जाते। बिछौने के स्थान पर दूकान की पक्की जमीन होती और तकिया के स्थान पर इनके हाथ। खाने को दूकान से जो कुछ भी मिल जाता, उसी पर सतोष कर लेते। महीनो खाने को रोटी नही मिली। कभी बासी ठण्ढे पराठे, कभी पूरी अथवा बची-खुची मिठाइयो के टुकडे-मात्र इनका भोजन रहता था। कहते है, प्रारम्भ के उन दिनो कभी ऐसा नही हुआ कि भोजन से इन्हे तृप्ति मिली हो। देहात से आते समय जो शरीर यथेष्ट तन्दुरुस्त था, आग, धुएँ, मक्खियो, कीडो तथा वर्रो से घिरे और रात-दिन के काम से लथ-पथ, पसीने से तर रहकर काम मे पिसते रहने के कारण वह अव क्षीण हो चला था। माता-पिता नही थे, भाई भी कोई नही था। काम से इतनी भी छुट्टी नही मिलती थी कि कही घडी-दो-घडी के लिए टहल ही आते। दूकान से भाग जाने को जी होता था। लेकिन जब ख्याल आ जाता कि गाँव मे तो रोटी का एक टुकडा भी देनेवाला कोई नही है, तो मन मसोमकर रह जाते थे। कोई भी तो ऐसा नही था, जिससे अपना दुख कहते। कभी-कभी रात मे नीद नही आती थी। गाँव के ही स्वप्न देखते रहते। बच-पन याद आता, साथ के अवारा लडके याद आते और माता-पिता का प्यार याद आता। घटो रोते रहते।

एक दिन की वात है, एक और पडोसी दूकानदार ने इनको रात के बारह वजे इसी दशा मे देख लिया। उसके हृदय मे दया थी, धर्म था।

ने केवल तीन वर्ष नौकरी की। अब उसके पास लगभग दो सौ रुपये हो गये थे। रात-दिन वह यह सोचा करता था कि क्या कभी कोई ऐसा दिन भी होगा, जब इसी तरह की एक दूकान उसकी भी होगी। काम करते-करते वह इसी तरह के स्वप्न देखा करता।

रामधन सेवा के कार्य मे बडा निपुण था। दूकान पर उसके सुपुर्द जो कुछ काम था, उसे तो वह पूरा करता ही था। साथ ही दूकानदार लाला जगतनारायण के घर पर अकसर चला जाता और जगतबाबू के घर के अन्दर जाकर गृहस्थी-सम्बन्धी आवश्यक सामान भी ले आता। इसका फल यह हुआ कि धीरे-धीरे वह लालाजी के परिवार का एक विश्वास-पात्र नौकर हो गया।

रामधन चाहता, तो एक छोटी-मोटी दूकान अब भी कर सकता था। पर उसके सामने एक बडी कठिनाई यह थी कि वह पढा-लिखा कतई न था और उमर अब उसकी अठारह वर्ष की हो गई थी। तो भी प्राय: वह सोचा करता, क्या कोई ऐसा दिन होगा, जब मैं इतना पढ जाऊँगा कि इसी तरह की दूकानदारी कर सकूँगा। चीजो के नाम वह जान गया था। कहाँ से कौन माल किस भाव आता है, इसका ज्ञान धीरे-धीरे उसे हो चला था। किन्तु पत्र-व्यवहार करने की योग्यता भी तो उसे होनी चाहिए थी।

एक दिन की बात है जगतबाबू खाना खाने के लिए घर आये हुए थे। ज्योंही लौटे, तो देखते क्या हैं, रामधन एक स्लेट पर कुछ लिख रहा है। किन्तु ज्योंही उनकी निगाह उस पर पडी, त्योंही रामधन ने स्लेट की रेखाएँ मेट दीं। तब दूकान पर बैठते ही उन्होंने सब से पहले वह स्लेट देखी, जिसमे कुछ टेढे-मेढे अक्षर ग म र म के रूप मे बने हुए थे। जब तक दूकानदारी का समय रहा, तब तक तो वे काम मे लगे रहे। पर ज्योंही दूकान बढाने की बेला आई, जगतबाबू ने रामधन से पूछा—दूकान बढाकर तुम

पर पूरा अपना जो वक्त बरबाद करते हो, क्यों न उसको रात्रि-पाठशाला में बिताओ। अभी पढ लोगे तो बहुत अच्छा होगा।

बस, फिर क्या था, रामधन रात्रि-पाठशाला मे पढने लगा।

इसी तरह दो साल और बीत गये। अब रामधन को वेतन में १२) मिलते थे। ७) महीने की बचत वह अब उसमे बराबर कर ही रहा था। इस तरह कुल मिलाकर अब उसके पास लगभग पाँच सौ रुपये हो गये थे, जो सेविंग बैंक मे उसी के नाम मे जमा थे।

उन्ही दिनों जगत बाबू का एक मकान बन रहा था और उस मकान में उनका सारा रुपया लग चुका था। जाड़े के दिन थे, माल करीब-करीब चुक गया था। और नया माल मँगाने के लिए अब उनके पास और रुपये नही रह गये थे। सोच विचार मे बैठे बैठे वे इतने उदास थे कि चिंताभाव उनकी मुद्रा मे स्पष्ट झलकता था। दूकान बढ़ाकर जब वे घर चलने लगे, तो रामधन ने पूछा—बाबू जी, अगर आप मुझे माफ कर दे, तो मै एक बात पूछूँ? आप आज किसी चिंता मे डूबे हुए जान पड़ते हैं।

जगत बाबू—लेकिन तुम उस चिंता को दूर नही कर सकते।

रामधन—लेकिन बाबू, कुछ मालूम भी तो हो। मैंने आपका बहुत नमक खाया है। अगर किसी काम आ सकूँ, तो आप मुझे उसके मौके से दूर क्यो रखते हैं?

जगत बाबू—कुछ रुपये की जरूरत आ पड़ी है। दूकान मे माल इस कदर कम है कि अगर एक हजार रुपये का और इन्तजाम न हुआ, तो दूकान उठा देनी पड़ेगी। उसके बाद क्या होगा, यही सोचता हूँ। चाहूँ तो मकान के आधार पर कर्ज मिल सकता है। पर यह बात है कितनी बेइज्जती की कि मकान पूरा बन भी न पाये और उसे गिरवी रखने की नौबत आ जाय। घर मे जेवर मुश्किल से दो हजार का होगा। बीबी से उसे उतरवाता हूँ तो घर की शांति भंग होती है। क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ समझ

में नही आता, रामधन। ऐसा जान पड़ता है, यह मकान मुझे खा जायगा।

रामधन से अब और सहन न हुआ। झट से वह बोल उठा—आपकी पूरी सेवा के लायक तो मैं अभी नही हुआ, लेकिन पाँच सौ रुपये तो जमा कर ही लिये है। आप चाहे तो कल ही निकाल लूँ।

जगत बाबू इस बात को सुनकर उछल पडे। बोले—अच्छी बात है। रुपये तुम कल उठा लो। रह गये पाँच सौ, सो इतने का प्रबन्ध मैं किसी तरह कर लूंगा।

दूसरे दिन रामधन ने ५००) निकाल कर जगत बाबू के हाथ पर रख दिये। उधर जगत बाबू ने पांच सौ रुपये बैंक से कर्ज ले लिये। इस तरह फसल के समय की उनकी आवश्यकता की पूर्ति हो गई।

यह सब तो हुआ, लेकिन रामधन की इच्छा अभी पूरी नही हुई थी। तीन महीने बाद जगत बाबू ने कह दिया था, जिस दिन तुम्हे रुपये की जरूरत हो, कह देना—रुपया तैयार है।

रामधन ने कह दिया—वह तो आप ही का है। मुझे उसकी कोई जरूरत नही।

धीरे-धीरे साल का आखीर आया और हानि-लाभ का चिट्ठा बनने लगा। रामधन दिन-भर अपने काम मे लगा रहता। यह देखता रहता, कौन माल कहाँ से—किस भाव से—आता है। धीरे-धीरे वह अब चिट्ठियाँ पढने लगा था। अक्षर उसके सुन्दर नही बनते थे। तो भी शुद्ध-शुद्ध वह लिख तो सकता ही था। अन्त मे जब खाता नया बनाया गया और बही का पूजन हो गया तो जगत बाबू ने रामधन से कहा—एक खुशखबरी तुमको सुनाता हूँ, रामधन।

रामधन ने पूछा—बतलाइये।

जगतबाबू बोले—मेरी गृहिणी ने कल रात में कहा था रामधन का पयाँ बहुत फलता है। इस साल जितना लाभ हुआ उतना कभी नही हुआ था। इससे तो अच्छा है, दूकान में उनका एक आने का हिस्सा कर दिया जाय। सो इस साल की जो आमदनी हुई है, उसके तुम्हारे हिस्से की रकम दो सौ के लगभग होती है। पाँच सौ तुम्हारी जो पूँजी है, वह इससे अलग है। कुल मिलाकर ७००) होते हैं। ये रुपये या तो तुम मुझसे कल ले लो, या दूकान के हिस्से के रूप में जमा रक्खो।

मोहन इसी समय बोल उठा—उस दिन से रामधन जगत बाबू की दूकान में एक आने का हिस्सेदार हो गया।

चाचा—लेकिन रामधन की उन्नति का यह इतिहास तो अभी प्रारंभ का ही है। इसके बाद जो उसका असली विकास हुआ, उसकी कथा भी कम रोचक नही है। सृष्टि का यह चक्र बड़ा विचित्र है। किसी के उत्थान के साथ किसी का पतन मिश्रित है, सलग्न है, कोई नही जानता। जगत बाबू एक दिन इस असार ससार को छोड़कर चलते बने। और तब रह गये, उनके वे बच्चे, जो अभी पढ ही रहे थे। दुख-सुख तो जीवन के साथ लगे है। किन्तु काल-चक्र तो अपनी गति से चलता ही रहता है। जगत बाबू को मनुष्य की पहचान थी, वे रामधन की विकासशील प्रतिभा और ईमानदारी से परिचित थे। परन्तु उनके देहावसान के बाद, उनके बडे लड़के, जो यूनिवर्सिटी मे पढ रहे थे, रामधन से परिचित न थे। कुछ आवारा दोस्तो ने उनके कान भर दिये। और उसका फल यह हुआ कि रामधन को उसका हिस्सा देकर उन्होने उसे दूकान से अलग कर दिया।

यह सब कुछ हुआ, किन्तु रामधन के हृदय मे कोई अन्तर नही आया था। दूकान से अलग होकर उसने अलग दूकान तो कर ली, पर जगत बाबू के परिवार के प्रति उसकी श्रद्धा का भाव अब भी कम नही हुआ था।

उधर जगत बाबू की दूकान पर जो दूसरा आदमी रक्खा गया वह खाऊ था। उसकी नियत अच्छी नही थी। अत उसका नतीजा यह हुआ कि वह दूकान टूट गई।

मोहन—किन्तु रामधन की दूकान तो तब और भी उन्नति पर रही होगी।

चाचा—उसकी दूकानदारी जो बराबर उन्नति करती गई, उसका एक रहस्य था।

मोहन—वह क्या ?

चाचा—बात यह है कि उसने कभी भी अपने ग्राहको को ठगने का प्रयत्न नही किया। ईमानदारी मे काम करना ही उसकी सफलता की कुजी थी। कभी-कभी वस्तुओ के दाम अनाप-शनाप बढ जाया करते है। दूकानदारो को यह मोका रहता है कि वे चाहे तो समय के अनुसार कुछ अधिक रुपया लाभ रूप मे पैदा कर ले, और चाहे अपनी दूकान की साख ओर भी अधिक बैठा ले।

मोहन—लेकिन जब वस्तुओ का दाम बढ गया हो, तब उन बढी हुई कीमतो पर माल न बेचना भी कोई बुद्धिमानी तो है नही।

चाचा—बात यह है कि वस्तुओ का मूल्य बढ जाने पर भी जो दूकानदार उनका अधिक मूल्य नही बढाता, थोडा ही लाभ लेकर सतोष कर लेता है, उसके ग्राहको की सख्या अधिक बढ जाती है। ओर दूकानदारी का यह एक नियम-सा है कि जो ग्राहक एक बार जम जाते है, वे बिना विशेष कारण के जल्दी नही उखडते। रामधन ने ऐसा ही किया। एक तो उसने अन्य दूकानदारो की अपेक्षा वस्तुओ का मूल्य अधिक नही बढाया, दूसरे बढी हुई कीमतो से होने वाले लाभ की रकम को विशेष कोष के रूप मे जमा रक्खा।

मोहन—एक ही बात हुई। चाहे उस रकम को हम अपने स्थायी कोष मे जमा कर लें, चाहे उसे अलग रहने दे। जो रुपया एक बार अपना

मोहन—तो क्रय-विक्रय का आदर्श आप यही मानते है थोडा लिया जाय, ताकि विक्रय का परिमाण वढता रहे ? मूल्य वढ जाने पर लाभ के एक अश को विशेष कोप के रूप मे सचित जाय, जो उस समय काम आये, जव वस्तुओ का मूल्य घट रहा हो। वस्तुएँ विशुद्ध और नई दी जायँ और सबके लिए दाम एक हो।

चाचा—हाँ बस, सार रूप मे तो यही है ।

चाचा-भतीजे ये वाते करते हुए जिस समय घूम कर लोट रहे थे उसी समय रामधन भी उधर से आ निकले ।

मोहन सोचने लगा—मनुष्य धूल भरा हीरा है । कौन जानता था कि एक अनाथ बालक एक दिन इतना बडा आदमी बन जायगा ।

कहानी-परिचय

आत्माराम

श्री प्रेमचन्द जी की सर्वोत्तम कहानियो मे आत्माराम एक है। बेदो ग्राम का रहनेवाला सुनार महादेव अपने तोते को बहुत चाहता है। और सयोगवश तोते को पकडने जाने की दौड़ मे उसे अशर्फियो का हडा मिल जाता है। इस धन की प्राप्ति से उसका मन ही बदल जाता है और वह धर्म की ओर उन्मुख हो जाता है। उस धन से उसने पुण्य कार्य किये और आज भी वेदो में उसकी कीर्ति गाई जाती है।

प्रेमचन्दजी की कहानियो की भाषा कहानी के लिये सभी गुणो से युक्त है। सर्व सुगम होने के साथ उसमे जो एक बात सबसे विशेष है वह मुहाविरों का प्रयोग है। हिन्दी साहित्य मे इतने सुन्दर ढग से मुहाविरो का प्रयोग करनेवाला अन्य कोई भी नही है। उनकी अनेक कहानियो के समान यह कहानी भी ग्रामीण वातावरण को लेकर है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी प्रेमचन्द जी कहानी लेखको मे सबसे बढकर है।

महादेव का चित्रण बडा स्वाभाविक हुआ है। गाँव के सुनारो मे आज भी अनेक ऐसे दिखेगे जिनमे महादेव के पूर्व जीवन से पूर्ण साम्य दिखेगा। वैसे अर्थ पिशाच आज भी गाँवो मे है जिनका प्रात नाम लेना अपशकुन समझा जाता है।

धन मिलने पर उसमे होने वाला परिवर्तन भी स्वाभाविक ही है।

रोचकता इस कहानी मे बहुत है। प्रारम्भ करने पर समाप्ति के पूर्व छोड पाना सभव नही। मुहाविरेदार भाषा के साथ यह कहानी गाँवों के जीवन की एक झाँकी भी प्रस्तुत करती है।

मिठाईवाला

श्री वाजपेयी जी की यह कहानी मनोवैज्ञानिक कहानी है। कथा का नायक एक प्रतिष्ठित घर का व्यक्ति है। परन्तु समय के फेर से उसके बाल बच्चे सभी को काल ने ग्रस लिया। जो स्नेह उसका अपने बच्चो मे था अब वही अन्य बच्चो की ओर मुड गया है। सभी बच्चो मे उसे अपने बच्चे दिखते हैं। अपने बच्चो को प्रसन्न करने के लिये उनके मुँह पर हँसी लाने के लिये वह जो कुछ करता आज वही सभी बच्चो के लिये कर रहा है। पहिले उसने मुरली बेचनी प्रारम्भ की। सस्ती और नवीन होने के कारण बच्चो का समूह टूट पडने लगा। वशी पाने पर जो सरल मुस्कान बच्चे के मुँह पर आजाती उसमें वशीवाला सब कुछ पा जाता।

वशी जब बच्चो के लिये पुरानी पड़ गई और उसमे पहिले इतना उत्साह न रहा तो वशी वाले ने अपना व्यवसाय भी बदल दिया और अँग्रेरेजी मिठाईयाँ वेचनी प्रारम्भ कर दी। बच्चो की फिर वही भीड जुट पडी। यही उसके जीवन का क्रम हो गया।

नायक के चरित्र का बडा ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पूर्ण हुआ है। ऐसी कहानियो की अपने साहित्य मे बडी कमी है। वाजपेयी जी का प्रयत्न इस ओर स्तुत्य है।

कहानी की भाषा सरल और सर्वसुगम है।

स्वाभिमानी नमकहलाल

कौशिक जी की यह कहानी आदर्शवादी है। छगामल ने मरते समय अपने पुत्र चुन्नू को अपने मुनीम मटरूमल के हाथो में सौपा था। परन्तु उनके मरने के थोडे ही दिनो पीछे चुन्नूमल ने मटरूमल को काम से अलग कर दिया। कारण केवल यह था कि मटरूमल चुन्नू के स्वार्थी मित्रो के हाथ मे

चुन्नूमल को कठपुतली की तरह नाचते न देख सकते थ और समय कुसमय टोका करते थे ।

मटरूमल के हटते ही स्वार्थी साथियो की बन आई । धन पानी की की तरह बहाया जाने लगा । व्यापार की ओर से उदासीनता दिखलाई जाने लगी । फलस्वरूप जब एक दिन एक हुण्डी के भुगतान की बात आई तो ज्ञात हुआ कि रुपया नही है । बडी दौड़ धूप हुई पर सब व्यर्थ । अन्त में मटरूमल बुलाये गये। उन्होने अपनी चतुराई से यह बेला दूर कर दी । इसके पश्चात अपने घर चले गये ।

अब चुन्नूमल को मटरूमल मुनीम का मूल्य ज्ञात हुआ । उन्होंने पूरा प्रयत्न किया कि वे लौट आये और अपने पुराने कार्य को सँभाले । पर तीर हाथ से बाहर जा चुका था । मटरूमल किसी प्रकार तैयार न हुये और चुन्नूमल को हाथ मलकर रहना पडा ।

भाषा सर्व सुगम, कथोपथन प्रणाली सुन्दर, कहानी जिज्ञासा पूर्ण तथा मनोरजक है । किसी काम के करने मे जल्दी न करनी चाहिये । और बहुत सोच समझकर मुँह से बात निकालनी चाहिये । जो इन बातो का ध्यान नही रखते उनकी वही दशा होती है जो चुन्नूमल की है ।

शरणागत

श्री वृन्दावन लाल जी वर्मा की यह कहानी पुराने क्षत्रियो के आन की एक झाँकी प्रस्तुत करती है ।

रज्जब जाति का कसाई है । गावो के हिन्दू कसाई को बडी घृणा की दृष्टि से देखते हैं । उसे कोई अपने यहाँ ठहरने तक नही देता । पर अपनी बीमार पत्नी को लेकर उसे विवशत गाँव के सबसे अधिक स्वाभिमान और धाक रखने वाले गढी के ठाकुर के दरवाजे पर जाना पड़ा । कसाई

की जाति जानकर ठाकुर उसे निकालने को ही था कि शरणागत जानकर कोमल पड जाता है ।

ठाकुर डाका डालने वाले गिरोह का सरदार है । उसके साथियो को पता चल गया है कि एक कसाई रुपये लेकर गाँव मे आया है । वे खोजते-खोजते ठाकुर के यहाँ भी आते हैं । परन्तु ठाकुर उन्हे टरका देता है ।

दूसरे दिन जब कसाई चला जाता है तो ठाकुर का गिरोह भी लूट-पाट के विचार से गाँव के बाहर जाता है । सयोग वश वे वही गाडी घेरते हैं जिसके भीतर रज्जब की बीमार पत्नी पडी है और रज्जब गाडी पर है । जब ठाकुर को ज्ञात हो जाता है कि यह तो वही शरण मे आया हुआ कसाई है तो अपने साथियो को मना करता है । परन्तु जब वे एक कसाई ऐसे निर्दयी और हत्यारे को बिना लूटे छोडने पर तैय्यार नही होते तो ठाकुर उन सबसे लडने को कमर कस लेता है । विवशत वह कसाई को तो छोडते ही है साथ ही ठाकुर से भी सम्बन्ध विच्छेद कर लेते है । अपनी जीविका को सरलता पूर्वक ठुकराते हुये भी ठाकुर ने शरण मे आये हुये कसाई और विधर्मी की रक्षा से मुँह न मोडा ।

कहानी की भाषा सजीव, सुबोध और ओजपूर्ण है । शरणागत की की रक्षा की यह भावना अब भी देहात मे वर्तमान है ।

अग्निहोत्री

माननीय कन्हैया लाल माणिक लाल द्वारा लिखी गई यह कहानी अपनी एक विशेषता रखती है । इस परिवर्तनशील ससार मे अपने को यदि समय और स्थान के अनुसार न बनाया गया तो जीवन चला पाना भी कठिन हो जाता है । अग्निहोत्री जी भारत के प्राचीन आचार-विचार के कट्टर मानने वाले हैं । अपने परिवार से ही नही विश्व भर के लोगो मे इसे देखने के वे इच्छुक है । पुत्र को कई वर्ष बम्बई मे जब बिना पत्र-व्यवहार

के व्यतीत हो गये तो उससे मिलने के लिए वे स्वयं बम्बई पहुँचते है। छुवा-छूत के भय से रास्ते भर वे न भोजन करते है और न नल का जल पीते है। उन्हे विश्वास है कि बम्बई पहुँचते ही गोविन्दराम उनकी सब कठिनाइयाँ दूर कर देगा। गोविन्दराम के यहाँ पहुँचने पर अपने पोते को चाय के साथ टोस्ट खाते देखकर उनके कान खडे हो जाते है। गोविन्दराम की पत्नी को अपने पति का नाम लेते तथा लज्जा हीन व्यवहार करते पाकर वे और भी चौकन्ने हो जाते है। वहाँ कि गन्दगी मे उनका दम घुटने लगता है और वे समुद्र किनारे मन्दिर मे चले जाते है। वहाँ भी दो ब्राह्मणो को धर्म के नाम पर व्यापार करते पाकर ठहरना कठिन हो जाता है और पुन. पुत्र प्रेम उन्हे गोविन्दराम की चाल की ओर खीचता है। मार्ग मे अपने सुपुत्र को सिगरेट पीते तथा ईरानी होटल मे मधु पान करने के लिये जाते पाकर उन्हे विरक्ति हो जाती है। ससार से धर्म को उड गया पाकर उन्हे जीवन भार स्वरूप ज्ञात होता है। अन्त मे समुद्र मे डूबकर वे इस दुखसे छुटकारा पाते है। इस व्यगात्मक कहानी मे एक सीख है समय के अनुसार अपने को ढालने की आवश्यकता है। जो समय की धार के साथ न चलेगा उसे जीवन धारण करने मे भी कठिनाई दिखने लगेगी और अत मे उसे अपने को भी मिटा देना होगा।

कहानी मे रोचकता और धारा प्रवाहिकता है। भाषा पर गुजराती की छाप है।

मैं रूस जा रहा हूँ

श्री पं० सीताराम जी चतुर्वेदी द्वारा लिखित यह कहानी भी व्यगात्मक है। प्रारम्भ से लेकर अंत तक हास्यरस की जो धार इसके भीतर प्रवाहित होती है उससे पाठक की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढती जाती है। कहानी का नायक पिल्ले काल्पनिक होते हुये भी समाज मे किसी भी स्थान

पर देखा जा सकता है। आज देश मे अपने तुच्छ स्वार्थ सिद्धि के लिये गिर-गिट के समान रग बदलने वाले नेताओ की कमी नही है। पिल्ले ऐसे ही लोगो का प्रतिनिधि है। उसका ध्येय सहधर्मिणी प्राप्त करना है। एक रूप धारण करने के पश्चात जब सफलता के लक्षण नही दिखते तो वह नि सकोच उसे छोड देता है और दूसरा वाना धारण कर लेता है। अन्त मे जैसे को तैसा के अनुसार उसकी भेट राम कटोरी देवी से हो ही जाती है जो अपनी पुत्री शारदा के साथ ऐसे ही किसी आँख के अन्धे की खोज मे बम्बई तक आई है। कामरेड पिल्ले का बहन शारदा के साथ थोडे ही दिन काम करना दोनो के एक दूसरे के निकट ला देता है और रूस जाने के बहाने राम कटोरी देवी उन्हे लेकर चम्पत हो जाती है और मेरठ मे दोनो का विवाह हो जाता है।

भापा की दृष्टि से चतुर्वेदी जी का हिन्दी के क्षेत्र मे एक विशेष स्थान है। अन्य भाषाओ के शब्दो का हिन्दी रूपकरण उनका बडा सुन्दर होता है। कहानी का नाम पढने के पश्चात उसके विषय मे जो एक जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है वह निरन्तर बनी रहती है और अन्त मे कटोरी देवी के निमन्त्रण पत्र से ही दूर होती है

भापा की सरसता तथा स्वाभाविकता ने कहानी मे जीवन डाल दिया है।

भाषण

श्री गौड जी की यह कहानी हास्य रस की है। आज देश मे बडा छोटा परखने का जो मान दण्ड है वह है धन। यदि किसी के पास धन है तो वही योग्य, बडा, बुद्धिमान सभी कुछ माना जाता है। पलटूराम भी इसी प्रकार का व्यक्ति है। उसके लिये पढना लिखना साधारण अक्षर ज्ञान तक ही सीमित है। बडी कठिनाई से अक्षर अक्षर जोड कर वह थोडा बहुत पढ सकता है। परन्तु उसके पास रुपया है और इसी लिये अपना उल्लू सीधा

मित्रो (?) ने उसे एक सभा का सभापति ही बना डाला । ऐसे काठ के उल्लुओ की पोल कभी न कभी खुलती ही है । पलटूराम की भी पोल खुली । भाषण लिखा हुआ पढ सकना उनकी सामर्थ के बाहर था अत वह छपाया गया । परन्तु मुद्रणालय की भूल से 'भ' की जगह 'म' छप गया । और जब वही 'भ' की जगह मे 'म' श्री पलटूराम जी सभापति ने पढना प्रारम्भ किया तो हँसी के फौवारे छूटने प्रारम्भ हो गये । और सभापति जी को मुँह लटका कर नीचे उतरने पर बाध्य होना पडा ।

श्री कृष्णदेव प्रसाद जी गौड 'बेढब' हास्यरस के सफल लेखक है । उनकी इस कहानी मे भी हास्य सर्वत्र वर्तमान है । हास्य रस की कहानियो का हिन्दी साहित्य मे बडी अभाव है । बेढब जी का इस क्षेत्र मे कार्य प्रशसनीय है ।

परिवर्तन

श्री करुणापति जी त्रिपाठी द्वारा लिखित यह कहानी भारतीय संस्कृति व्यक्त करने वाली है । प्राचीन भारत मे स्वाभिमान की मात्रा अत्यधिक थी । हार और जीत क्षणिक न होते थे । एक बार हार जाने पर पीढी दर पीढी बदले की भावना बनी रहती थी और जब तक बदला चुका न लिया जाता वह ऋण के समान भार बना रहता था । इस कहानी मे वह अतीत सजीव हो पडा है ।

भद्रदत्त और उसका पुत्र राजाज्ञा से काश्मीर से आये हुए दम्पति से शास्त्रार्थ करते है और काश्मीर की विदुषी द्वारा सम्मोहित होकर उन्हे हार माननी पडती है । उसी के कारण भद्रदत्त को फाँसी लगाकर मरने के लिए जाना पडता है । पिता की मृत्यु का कारण जानने पर पुत्र बदला लेने पर कटिबद्ध होता है और तान्त्रिक बन जाता है । उसकी तपस्या सफल होती है और काश्मीर की उसी नारी का शिशु कापालिक के हाथ मे बलि के

लिए आ जाता है। जिस बदले के लिए उसने इतना प्रयत्न किया, इतनी तपस्या की वही जब सफल होने का समय आया तो एक नई बात हो गई। हर प्रकार से पुत्र रक्षा मे असमर्थ होने पर उस नारी ने अपने हृदय के टुकडे को कापालिक के चरणो मे डाल दिया। ईर्षा से दग्ध हृदय को उस स्त्री के आत्मसमर्पण ने शीतल बना दिया और कापालिक बच्चे को हृदय से लगाकर स्नेहपूर्ण नेत्रो से देखने लगा।

कहानी मे रोचकता है, जिज्ञासा सर्वत्र वर्तमान है। भाषा सस्कृतनिष्ठ और कोमल है।

शे! शे!

नाटकीय शैली मे लिखी हुई यह कहानी अपना एक विशेष स्थान रखती है। वर्णनशैली बडी प्रभावशाली है। 'शे शे' चीनी भाषा मे जूते को कहते है। नाम से और कहानी से जो सबध है वह अन्त तक ज्ञात नही होता और इसी कारण पाठक के मन मे जिज्ञासा बनी रहती है।

कुआँऊ ने चीन के सम्राट यूँगलो द्वारा पेकिङ् नगर के विशाल घटे के निर्माण का ठेका लिया। परन्तु एक बार ढालने पर वह टूट गया और उसे राजाज्ञा हुई कि यदि दूसरी बार वह ठीक न उतरा तो उसे मृत्युदण्ड मिलेगा। इस समाचार ने जितना उसे चिन्तित बनाया उससे अधिक व्यग्र उसकी पुत्री कोआई हो पडी। उसे जब यह ज्ञात हुआ कि यदि साँचे मे ढाली जाने वाली धातु के साथ किसी अच्छी लडकी का खून भी मिल जाये तो वह न टूटेगा तो उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। साँचे मे पिघली हुई धातु डाली गई तो कोआई की चीत्कार सुनाई पडी। घण्टा तो टूटने से बच गया पर कुआँऊ का हृदय टूट गया। अत मे एक दिन घटा बजाते बजाते ही वह मर गया। उस समय भी उसके हाथ मे कोआई का वही जूता था जो उसके साँचे मे भरते समय कुआँऊ के हाथ मे रह गया था।

भाषा सरल तथा कहानी के योग्य है। वर्णन के प्रभावशाली ढग ने कहानी को सजीव बना दिया है।

डावा

सुश्री उमा कुमारी द्वारा लिखित यह कहानी वर्णनात्मक शैली की है। डावा तिब्बती लामा शब्दग की एकमात्र कन्या है। तथागत की पूजा के पश्चात उठने पर जब उसे ज्ञात होता है कि गुप्तचर होने का अपराध लगाकर सारिपुत्र को मृत्यु दण्ड दिया जाने को है तो उनकी जीवन रक्षा के लिए वह चल पडती है। मार्ग के अनेक विघ्न बाधाओं को लाँघती हुई वह सारिपुत्र के पास पहुँचती और उन्हे हटाने का उपक्रम करती है। सारिपुत्र पहले तो इस पर तैयार नही होते पर अन्त मे मान जाते है और वह स्थान छोड देते है। गुप्तचर को भागने मे सहायता देने के अपराध में पिता पुत्री दण्ड के भागी होते है।

कहानी मे भाषा की सरलता तथा धारा प्रावाहिकता है सारिपुत्र की जीवनरक्षा के लिए डावा का त्याग प्रशसनीय है।

"सूली ऊपर सेज पिया की"

"सूली ऊपर सेज पिया की" श्री रुद्र जी की नवीन रचना है। काशी के अतीत वैभव की गाथाये काशी के वृद्धो के मुख से आज भी सुनी जाती है। उन्ही मे से यह भी एक है। परन्तु रुद्र जी की कथन प्रणाली ने अतीत को वर्तमान मे ला खडा किया है। पाठक पढते समय भूल जाता है कि वह कहानी पढ़ रहा है। भिक्षुक का सुख-दुख उसका अपना हो जाता है। वह कहानी मे तल्लीन हो पडता है।

उस जमाने मे जिसे गुण्डा कहा जाता था, जिससे सरकार परेशान थी और जिसको पकडने के लिए पारितोषिक की घोषणा हो चुकी थी

उसमे कितना चरित्र था, कितनी नैतिकता थी, गरीबो और असहायो के साथ उसकी कितनी एकरसता थी इसका प्रतीक कहानी का नायक भिक्षुक भगड़ है। पूरी काशी उस पर मुग्ध है। पारितोषिक की घोषणा होने पर भी स्वप्न में भी कोई उसे पकडवाने की नही सोचता। वारागनाओ मे प्रसिद्ध सुन्दरी अमीरजान भी उसके लिए तुच्छ है और उसका अपमान करते हुए भिक्षुक प्रसन्नतापूर्वक बहुमूल्य शाल वृद्धा को दे देता है। अपनी पत्नी से प्रतिश्रुत होने के कारण वह गगा पार जाता है और मनमे सदेह हो जाने से लौट पडता और अन्त मे गुफा के भीतर ही जला दिया जाता है। उसकी पत्नी भी अपने को जला डालती है।

कहानी की भाषा ओजपूर्ण, सर्व सुगम तथा हृदयस्पर्शी है। चरित्र-चित्रण बडा सुन्दर तथा मनोवैज्ञानिक है। वर्णनशैली सुलझी हुई है और इसी कारण पढते ही सामने चित्र सा खडा हो जाता है। कहानी ऐतिहासिक तथा घटना प्रधान है।

उसने कहा था

इस कहानी की विशेपता यह है कि लेखक ने थोडे स्थान, थोडा समय और थोडे पात्रो के द्वारा मनुष्य के भावो का इतना सजीव और हृदय स्पर्शी वर्णन किया है कि पाठक भूल जाता है कि वह कहानी पढ रहा है। उसके नेत्रो के सामने सभी पात्र सजीव से हो उठते है। शिथिलता का कही नाम नही है। प्रतिक्षण वर्णन आगे बढता चलता है। कहानी एक कला है जिसका प्रत्यक्षीकरण कह कर ही किया जा सकता है। वह जितने ही सुन्दर और सरस शब्दो के द्वारा प्रस्तुत की जायगी पाठक को अपनी ओर आकर्पित करेगी। लेखक के मन मे ये वाते पूर्ण रूप से वैठी हुई है। इसी कारण वह इस कला मे पूर्ण उतरा है। कहानी की विशेषता यह होती है कि उसके प्रत्येक वाक्य और कथोपकथन कथावस्तु के विकास

मे सहायक हो। वर्तमान कहानी मे शायद ही कोई स्थल ऐसा मिले जहाँ से एक वाक्य भी निकाला जाय और विकास मे बाधा न पडे। सिद्धहस्त लेखक की सफलता उसकी कृति के सम्पूर्ण रूप को ही देखने से ज्ञात होता है किसी अश के देखने से नही।

कहानी की दूसरी विशेषता उसमे निहित रोचकता है। यह कहानी इतनी रोचक है कि पढने के लिये प्रारम्भ करने वाला विना समाप्त किये इसे छोड नही सकता।

कहानी तभी सफल मानी जा सकती है जब उसको पढ कर पाठक पर वही प्रभाव पडे जिसे अपने समक्ष रख कर लेखक ने लिखा था। "उसने कहा था" कहानी इस कसौटी पर भी खरी उतरती है। लेखक ने थोडे मे वहुत कुछ कहा है। अपने पात्र और परिस्थिति पर उसका पूरा अधिकार है। पढते समय जान पढता है कि लेखक ने अपनी आँखो देखा वर्णन लिखा है। लडाई का मैदान कभी भी वहिर्नेत्रों से न देखने पर भी एक सच्चे कलाकार के समान गुलेरी जी ने अपनी कल्पना शक्ति से उस स्थल को पूर्ण रूप से सजीव चित्रित किया है। भाषा को पात्रो के अनुरूप करके भी लेखक ने उसमे जीवन ला दिया है। कथोपकथन का इतना सफल उदाहरण कदाचित ही अन्यन्त्र देखने को मिले।

क्रय-विक्रय का आदर्श

यह कहानी और कहानियो से एक विशेषता रखती है। साहित्य में अनेक विपय ऐसे हे जो वडे ही नीरस और उलझे हुये है। विद्यार्थी उनमे रुचि नही ले पाते और अध्यापक के लिये भी यह एक समस्या खडी हो जाती है कि विद्यार्थियो को कैसे अपनी ओर आकृष्ट करे। अर्थशास्त्र का विषय ऐसा ही है। आवश्यक और उपयोगी होने पर भी लोग इससे दूर भागने का ही प्रयत्न करते है। दुबे जी ने कहानियो के द्वारा अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों

के प्रतिपादन का प्रशसनीय कार्य किया है। कहानी और कथोपकथन के द्वारा उन्होने यह विषय सचमुच सरस और रोचक बना दिया है।

कहानी पढ जाने के पश्चात जब पाठक को यह ज्ञात होता है कि उसने तो अर्थशास्त्र का एक सि द्धान्त जान लिया तो वह आश्चर्य चकित रह जाता है।

क्रय-विक्रय का आदर्श भी ऐसी ही एक कहानी है जिसमे एक बालक से साधारण बातचीत करते हुये उसे उससे सम्बद्ध सिद्धान्त की छोटी बडी सभी बातें बतलाई जाती है। बच्चा पूर्णरूप से इन बातो को समझ जाता है। और स्वय प्रश्न करके उनकी बारीकियो तक पहुँच जाता है।

सिद्धान्त जानने के पश्चात भी जो उसमे बारीकियाँ होती है उन्हे अन्य पुस्तको से जान पाना कठिन होता है परन्तु इस कहानी मे लेखक ने प्रश्नोत्तर द्वारा उनके समाधान का भी प्रयत्न किया है।

नित्य प्रति की व्यवहरित भाषा मे कहानी रोचक और उपयोगी है। ऐसी नवीन कृतियो की अपने साहित्य मे आवश्यकता है।